


C. L. SAH

# रवीन्द्र-साहित्य

## सातवाँ भाग



धन्यकुमार जैन

# सूची

# बदला

## १

जमींदार मुकुन्दलाल बाबूके भूतपूर्व दीवानकी पौत्री और मौजूदा मैनेजरकी स्त्री इन्द्राणी देवी शायद किसी अशुभ मुहूर्तमें ही बाबुओंके घर उनके दौहित्रके ब्याहमें बहू-भातका न्योता खाने आई थी।

इसके पहलेका इतिहास जरा संक्षेपमें कह दिया जाय तो मामला साफ-साफ समझमें आ सकता है।

इस समय मुकुन्द बाबू भी भूतपूर्व हैं और उनके दीवान गौरीशंकर भी। कालके आह्वानकी उपेक्षा करके दोनोंमेंसे कोई भी अपनी जगह कायम नहीं रह सके। मगर जब थे तब दोनोंमें आपसका बंधन बहुत ही मजबूत था। बिना मा-बापके गौरीशंकरको जब कि कोई भी आजीविका नहीं थी तब मुकुन्द लालने सिर्फ उनका मुँह देखकर ही, विश्वास करके, उनपर अपनी छोटी-सी जमींदारीको देखरेखका भार सौंपा था। बादमें प्रमाणित हो गया कि उन्होंने गलती नहीं की। दीमक जिस तरह अपना आश्रय बनाती है, स्वर्ग चाहनेवाले जिस तरह पुण्य इकट्ठा करते हैं, गौरीशंकर उसी तरह अथक परिश्रम और प्रयत्नके साथ तिल-तिल करके दिनपर दिन मुकुन्दलालकी जायदाद बढ़ाने लगे। अन्तमें जब उन्होंने अपनी होशियारीसे आश्चर्यजनक कम कीमतपर दूसरेकी जमींदारीका हिस्सा बाँकागढ़ खरीदकर मुकुन्दलालकी जायदादमें शामिल कर दिया, तबसे मुकुन्द बाबूका खानदान गण्यमान्य जमींदारोंमें गिना जाने लगा। मालिककी तरक्कीके साथ-साथ नौकरकी भी तरक्की हुई; धीरे-धीरे उनके पक्के मकान, खेत-जमीन और पूजा-उत्सव वगैरहकी बढ़वारी होने लगी। और जो किसी जमानेमें मामूली तहसीलदार-से थे, वे भी, धीरे-धीरे दीवानजी कहलाने लगे।

बस, पहलेका इतिहास इतना ही है। वर्तमान समयमें मुकुन्द बाबूके एक दत्तक पुत्र है ; नाम है विनोदीलाल। और उनके मैनेजर हैं दीवान गौरीशंकरके सुशिक्षित नत-जमाई अम्बिकाचरण। दीवानजी अपने पुत्र रमाशंकरपर विश्वास नहीं करते थे ; और इसीलिए बुढ़ापेकी वजहसे जब वे काम छोड़ने लगे तो पुत्रको लाँघकर नत-जमाईको अपनी जगह दे गये।

काम-काज अच्छा चल रहा है। पहले जमानेमें जैसा था अब भी सब कुछ लगभग वैसा ही है, सिर्फ एक विषयमें जरा फरक है ; और वह यह कि मालिक-नौकरका सम्बन्ध अब सिर्फ काम-काजका ही सम्बन्ध है, हृदयका नहीं। पहले जमानेमें रुपया सस्ता था और हृदय भी कुछ सुलभ था, अब सर्वसम्मतिसे हृदयकी फजूलखर्ची लगभग बन्द हो गई है ; खास अपने ही आदमियोंके हिस्सेमें तंगातंगी हो गई है तो बाहरवालोंके लिए कहाँसे आवे ?

इस बीचमें बाबुओंके घर बड़े बाबूके धेवतेका ब्याह हुआ ; और उसमें बहू-भातके दिन दीवानजीकी नातिनी इन्द्राणी देवीका शुभागमन हुआ।

असलमें, संसार क्या है कुतूहलप्रिय अदृष्टपुरुषकी रासायनिक परीक्षाशाला है। यहाँ नाना प्रकारके विचित्र-चरित्र मनुष्योंको इकट्ठा करके प्रतिदिन उनके संयोग-वियोगके कितने चित्र-विचित्र अभूतपूर्व इतिहास बनाये और बिगाड़े जाते हैं उसकी कोई हद नहीं।

इस बहू-भातके उत्सवमें, ऐसे आनन्दके काममें, दो विभिन्न प्रकारकी महिलाओंमें भिड़न्त हो गई ; और देखते-देखते उस घरकी एक-सी बुनावटमें अचानक एक नये रंगका सूत पड़ गया और उसमें नई तरहकी गाँठ भी पड़ गई।

सबका खाना-पीना खतम हो जानेके बाद इन्द्राणी मालिकोंके घर शामकी तरफ जरा देरसे पहुँची। विनोदीलालकी स्त्री नयनताराने उससे देरीका कारण पूछा तो उसने घरके काम-धन्धेसे छुट्टी न मिलना और तबीयत ठीक न होना आदि कई सबब बता दिये, पर उससे किसीको सन्तोष नहीं हुआ।

असल कारणको यद्यपि इन्द्राणी छिपा गई, मगर फिर भी, समझ सबने लिया। कारण यह था कि मुकुन्द बाबूका खानदान उन लोगोंके मालिकोंका खानदान जरूर है, और वे पैसेवाले भी हैं, लेकिन कुलकी मर्यादाके लिहाजसे

गौरीशंकरका खानदान उनसे कहीं ऊँचा है। और इन्द्राणी उस ऊँचाईको भूल नहीं सकती। इसलिए, मालिकोंके घर कहीं उसे खाना-पीना न पड़े इस डरसे वह बहुत देर करके आई थी। उसका भीतरी मतलब समझकर, उसे खिलानेके लिए सबने काफी कोशिश की, लेकिन इन्द्राणीने हार नहीं मानी तो नहीं ही मानी। कोई भी किसी भी तरह उसे नहीं खिला सका।

पहले भी एक बार, मुकुन्दलाल और गौरीशंकरने इसी कुलाभिमानको लेकर इससे भी जबरदस्त मामला खड़ा कर दिया था। उस घटनाका यहाँ उल्लेख किया जा सकता है।

इन्द्राणी देखनेमें बड़ी सुन्दर है। बंकिम बाबूकी भाषामें सुन्दरीके साथ सौदामिनीकी तुलना प्रसिद्ध है। लेकिन उस तुलनाका अधिकांश स्थलोंमें मेल नहीं बैठता। इन्द्राणीने मानो अपने अन्दर एक तरहके प्रबल वेग और प्रखर ज्वालाको अपनी स्वाभाविक शक्तिसे अटल गांभीर्यपाशमें बहुत ही आसानीसे बाँध रखा है। बिजली मानो उसके मुँह आँख और सारे शरीरमें हमेशाके लिए स्थिर होकर बैठ गई हो। यहाँ उसकी चपलता निषिद्ध है।

इस सुन्दरी कन्याको देखकर मुकुन्द बाबूने चाहा था कि उससे उनके दत्तक पुत्रका ब्याह हो जाय; और इसके लिए उन्होंने गौरीशंकरसे प्रस्ताव भी किया था। प्रभु-भक्तिमें गौरीशंकर किसीसे भी कम न थे; अपने मालिकके लिए वे प्राण भी दे सकते थे। और, उनकी अवस्था चाहे कितनी भी उन्नत क्यों न हो गई हो, और मालिकने उनके प्रति मित्रताका बरताव करके उन्हें चाहे जितना भी बढ़ावा क्यों न दिया हो, फिर भी, वे स्वप्नमें भी कभी अपने मालिकके सम्मानको नहीं भूलते थे। मालिकके सामने, यहाँ तक कि उनके प्रसंगमें वे अत्यन्त विनम्र हो जाया करते थे। मगर, इस विवाहके प्रस्तावपर वे किसी भी तरह राजी न हो सके। प्रभुभक्तिका फर्ज और कर्ज कौड़ी-कौड़ी अदा करनेमें वे सदा तत्पर रहते; किन्तु कुल-मर्यादाका हक उनसे किसी भी तरह न छोड़ा गया। मुकुन्दलालके पुत्रके साथ वे अपनी नातिनीका ब्याह न कर सके।

नौकरका यह कुल-गर्व मुकुन्दलालको अच्छा नहीं लगा। उन्हें तो उलटी

यह आशा थी कि ऐसा करके वे अपने भक्त सेवकके प्रति अनुग्रह ही दिखाते। पर गौरीशंकरने उस बातको जब और ही रूपमें लिया, तो उन्होंने कुछ दिनों तक उनसे बोलचाल बन्द कर दी ; और इससे गौरीशंकरको काफी मानसिक कष्ट पहुँचाया। मालिकको यह नाराजी गौरीशंकरके हृदयमें शूलकी तरह चुभती रही ; लेकिन फिर भी, उन्होंने अपनी नातिनीका ब्याह बिना मा-बापके एक गरीब कुलीन लड़केसे कर दिया, और उसे वे अपने घरमें रखकर अपने ही खर्चसे शिक्षा देने लगे।

उसी कुल-मद-गर्वित बाबाकी नातिनी इन्द्राणीने आज अपने मालिकोंके घर बहू-भातके न्योतेमें जाकर कुछ खाया-पीया नहीं ; इससे प्रभुपत्नी नयनताराके मनमें सुमधुर प्रीतिरसका संचार न हुआ होगा, इस बातका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। नतीजा यह हुआ कि नयनताराकी विद्वेषपूर्ण कल्पना दृष्टिमें इन्द्राणीकी बहुत-सी हिमाकतें एकसाथ नजर आने लगीं।

पहली बात तो यह कि इन्द्राणी बहुतसे गहने पहनकर अत्यन्त सजधजकर आई थी। भला मालिकोंके घर इतनी तड़कभड़कके साथ आकर अपनी अमीरी दिखानेकी क्या जरूरत थी ?

दूसरे, इन्द्राणीको अपने रूपका घमंड और ठसक बहुत ज्यादा है। माना कि वह रूपवती है, पर नौकरी करनेवाले निम्न-श्रेणीके लोगोंमें इतना ज्यादा रूप होना अच्छा नहीं, और न इसकी जरूरत ही है। यह सच है कि सुन्दरी वह हजारोंमें एक है ; पर उसमें रूपकी ठसक या घमंड देखना नयनताराकी अपनी कल्पनाके सिवा कुछ नहीं। रूपके लिए किसीको दोष नहीं दिया जा सकता ; मगर जिसे बुराई ही करनी है वह इसके सिवा और कर ही क्या सकता है।

तीसरे, इन्द्राणीके दम्भका ठिकाना नहीं, चालू भाषामें जिसे कहते हैं मिजाज !

असल बात यह है कि इन्द्राणीमें एक तहरकी स्वाभाविक गम्भीरता थी। बहुत ही प्रिय और परिचितके सिवा वह किसीसे ज्यादा मिल-जुल नहीं सकती थी। इसके सिवा, 'मान न-मान, मैं तेरा मेहमान' सरीखी प्रवृत्ति या आगे बढ़कर सब काममें दस्तन्दाजी करना उसके स्वभावके खिलाफ था।

इस तरह, नाना प्रकारके ठीक और बेठीक कारण और अकारणोंसे नयनतारा क्रमशः गरम हो उठी ; और फजूलकी बात बढ़ाकर बेमतलब इन्द्राणीको बार-बार 'मैनेजरकी बीबी' 'दीवानजीकी नातिनी' कहकर छेड़ने और परिचित कराने लगी। और अपनी एक खास मुँहफट प्रिय दासीको ऐसा सिखा-पढ़ा दिया कि वह इन्द्राणीके बदनसे चुपट-चुपटकर, बिलकुल सहेलीकी तरह, उसके गहनोंको हिला हिलाकर समालोचना करने लगी। हार और बाजूबंदकी तारीफ करती हुई वह पूछ बैठी—"क्यों बहन, इनमें सोनेका पानी फिरा हुआ है क्या ?"

इन्द्राणीने अत्यन्त गंभीरतासे जवाब दिया—"नहीं तो, पीतलके हैं।"

नयनताराने इन्द्राणीको सम्बोधित करते हुए कहा—"तुम वहाँ अकेली खड़ी क्या कर रही हो, इन पत्तलोंको हाटखोलावालोंकी पालकीमें दे आओ तो जरा।" पास ही घरकी नौकरानी खड़ी थी।

इन्द्राणीने क्षण-भरके लिए अपनी बरुणियोंकी छायासे भारी पलकोंको उठाकर उदार दृष्टिसे नयनताराके चेहरेकी तरफ सिर्फ एक बार देखा और दूसरे ही क्षण चुपकेसे मिठाईकी पत्तलें उठाकर नीचे चल दी।

जिनके लिए यह मिष्टान्न-उपहार भेंट किया जा रहा था वे बहुत ही चंचल हो उठीं, बोलीं—"तुम क्यों तकलीफ कर रही हो बहन। दो न, उस महरीको दे दो।"

इन्द्राणी उसकी बातपर राजी न होकर बोली—"इसमें तकलीफ काहेकी ?"

"तो फिर मुझे ही दे दो।"

"नहीं, मैं ही लिये चलती हूँ।"—कहती हुई, अन्नपूर्णा जैसे स्निग्ध गंभीर प्रसन्न मुखसे गहरे स्नेहके साथ भक्तको अपने हाथसे अन्न उठाकर दे सकती थीं, ठीक उसी तरह अटल स्निग्ध-स्नेहसे इन्द्राणी पालकीमें मिठाई रख आई ; और उसी दो मिनटके संसर्गसे हाटखोला-वासिनी धनी-घरकी कुलवधू इस अल्प-भाषिणी मित-हासिनी इन्द्राणीके साथ आजीवन हार्दिक सखीत्व स्थापित करनेके लिए व्याकुल हो उठी।

इस तरह नयनताराने स्त्रीजन-सुलभ निष्ठुर निपुणताके साथ जितने भी अपमान-बाण बरसाये उनमेंसे एकको भी इन्द्राणीने अपनी देहमें न घुसने दिया।

सबके सब उसकी अकलंक समुज्ज्वल सहज-स्वाभाविक तेजस्विताकी कठिन ढालसे टकराकर टूट-टूटके नीचे गिर गये। उस गंभीर अविचल-भावको देखकर नयनताराका क्रोध और भी बढ़ने लगा; और इन्द्राणी सब समझकर न-जाने कब, सबकी निगाह बचाकर, किसीसे विदा बगैर लिये ही अपने घर चली आई।

## २

जो लोग शान्तभावसे सब-कुछ सह लेते हैं उन्हें भीतरी चोट बड़ी गहरी पहुँचती है। इन्द्राणीने यद्यपि आजके इस अपमानकी गहरी अवज्ञाके साथ उपेक्षा की है, मगर फिर भी इस चोटसे उसके हृदयको गहरी ठेस पहुँचे बगैर न रही।

एक ओर इन्द्राणीके साथ जैसे विनोदीलालके ब्याहकी बात छिड़ी थी वैसे ही दूसरी ओर किसी समय इन्द्राणीके एक गरीब फुफेरे भाई बामाचरणके साथ नयनताराके ब्याहका भी जिक्र चला था; और वह बामाचरण इस समय विनोद बाबूके यहाँ मामूली गुमाश्तेका काम करता है। इन्द्राणीको अभी तक याद है, बचपनमें एक दिन नयनताराके बाप लड़कीको साथ लेकर उसके घर आये थे और बामाचरणके साथ अपनी लड़कीका सम्बन्ध पक्का करा देनेके लिए उन्होंने दीवान गौरीशंकरकी काफी खुशामद की थी। उस दिन जरा-सी लड़की नयनताराकी असाधारण प्रगल्भतासे दीवानजीके घरकी औरतोंको बहुत ही आश्चर्य और कुतूहल हुआ था; और नयनताराकी उस अकाल-परिपक्वताके मुकाबिले मुँहचोर शरमीली इन्द्राणीने अपनेको अत्यन्त अनभिज्ञ और कमजोर महसूस किया था। गौरीशंकर भी उस लड़कीकी अनर्गल बातचीत और चंचल चेहरेसे बहुत खुश हुए थे; लेकिन, लड़कीके कुलमें जरा-कुछ त्रुटि होनेसे इस सम्बन्धके लिए उन्होंने अपनी राय नहीं दी थी। अन्तमें, उन्हींकी पसन्दगी और उन्हींकी कोशिशसे अकुलीन विनोदीलालके साथ नयनताराका ब्याह हुआ था।

किन्तु इन सब बातोंकी याद करके इन्द्राणीको कोई सांत्वना नहीं मिली, बल्कि अपमान और भी ज्यादा चुभने लगा। उसे 'महाभारत'में वर्णित

शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी और शर्मिष्ठाकी बात याद आने लगी। देवयानीने जैसे अपने प्रभुकी कन्या शर्मिष्ठाका दर्प चूर्ण करके उसे दासी बना लिया था, इन्द्राणी भी अगर वैसा कर सकती, तभी इसका बदला चुक सकता था। एक समय था जब कि दैत्योंके लिए दैत्यगुरु शुक्राचार्यके समान मुकुन्द बाबूके यहाँ उसके बाबा गौरीशंकर अत्यन्त आवश्यक थे। तब वे अगर चाहते तो मुकुन्द बाबूसे अपनी हीनता मंजूर करा सकते थे; लेकिन अफसोस कि वे ही मुकुन्दलालकी जमींदारीकी उन्नतिकी सीमा पार कराकर उसमें सब तरहका सिलसिला जमा गये हैं। इसीसे आज शायद उनको याद करके मालिकोंको उनके कृतज्ञ होनेकी कोई जरूरत ही नहीं रही। इन्द्राणी सोचने लगी, उसके बाबा बाँकागढ़ परगना बड़ी आसानीसे अपने लिए खरीद सकते थे, तब उनमें इतनी शक्ति भी थी, सो, उन्होंने ऐसा न करके परगना अपने मालिकके लिए खरीद दिया; और यह जो एक प्रकारका दान है, सो क्या आज उस मालिकके खानदानमेंसे किसीके ध्यानमें है? हम-ही-लोगोंके दिये हुए धन-सम्मानके गर्वमें आकर आज तुमलोग हमारी ही बेइज्जती करनेका हक पा गये हो! इन सब बातोंका खयाल कर-करके इन्द्राणीका चित्त अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा।

घर आकर इन्द्राणीने देखा कि उसके पति मालिकोंके घरका निमंत्रण और उसके बाद जमींदारीके आफिसका सब काम-काज निबटाकर अपने कमरेमें आकर आरामकुरसीपर पड़े हुए एकान्तमें अखबार पढ़ रहे हैं।

बहुतोंकी धारणा होती है कि पति-पत्नीका स्वभाव प्रायः एकसा होता है। इसकी वजह यह कि देवसे कहीं-कहीं पति-पत्नीमें स्वभावकी एकता देखकर उसे उचित और संगत समझ लेते हैं; और उम्मीद करते हैं कि शायद यही नियम सर्वत्र होगा। खैर कुछ भी हो, वर्तमान क्षेत्रमें अम्बिकाचरणके साथ इन्द्राणीके स्वभावका मेल दो-एक खास विषयमें जरूर देखनेमें आता है। अम्बिकाचरण मिलनसार आदमी नहीं हैं। वे बाहर जाते हैं तो सिर्फ कामकी ही खातिर। अपना काम पूरा करके और दूसरोंसे पूरा काम कराकर जब वे घर पहुँचते हैं तो ऐसा लगता है जैसे बाहरवालोंके हमलेसे आत्मरक्षा करनेके लिए वे किसी

दुर्गम दुर्गमें आ घुसे हों। बाहर वे होते हैं और उनका कर्तव्य-कार्य, और घरमें वे और इन्द्राणी ; बस, इतनेमें ही उनका सारा जीवन है और उसे वे पर्याप्त समझते हैं।

गहनोंकी छटा फैलाती हुई इन्द्राणी कमरेके भीतर आई। आते ही अम्बिकाचरणने मजाकमें उससे कुछ कहना चाहा कि इतनेमें सहसा उसका चेहरा देखकर वे चुप रह गये ; और चिन्तित चेहरेसे बोले—"तुम्हें हो क्या गया ?"

इन्द्राणीने अपनी सारी चिन्ताको हँसीमें उड़ा देनेकी कोशिश करते हुए कहा—"होगा क्या ? फिलहाल अपने स्वामी-रत्नके साथ मिलन हुआ है।"

अम्बिका अखबारको जमीनपर फेंकता हुआ बोला—"सो तो मुझे मालूम है। उसके पहलेकी वार्ता बताओ ?"

इन्द्राणी एक-एक गहना उतारती हुई बोली—"उसके पहले स्वामिनीके घरसे समादर प्राप्त हुआ है।"

अम्बिकाने पूछा—"समादरका ढंग क्या था ?"

इन्द्राणी पतिके पास आकर उसकी कुरसीके हत्थेपर बैठके गलेमें बाँह डालती हुई बोली—"तुमसे जिस ढंगका मिलता है ठीक उस ढंगका नहीं था।"

इसके बाद, इन्द्राणीने एक-एक करके सब बातें कह सुनाईं। उसने तय किया था कि पतिसे इस बातका जिक्र न करेगी, लेकिन ऐन वक्तपर उससे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते न बना ; और न इसके पहले ही कभी ऐसी प्रतिज्ञाओंकी वह रक्षा कर सकी थी। बाहरवालोंके सामने वह जितनी ही गम्भीर और संयत रह सकती थी, अपने पतिके पास आकर वह उतनी ही खुल जाती थी ; मानो अपनी प्रकृतिके सारे स्वाभाविक बन्धनोंको वह तोड़कर अलग फेंक देती हो। वहाँ वह अपनेको जरा भी ढकके न रख सकती थी।

अम्बिकाचरण सारी बातें सुनकर बहुत ही गुस्सा हो उठा। बोला—"आज ही मैं कामसे इस्तीफा दे दूँगा।" और उसी वक्त विनोद बाबूको कड़ी चिट्ठी लिखनेको तैयार हो गया।

इन्द्राणी कुरसीके हत्थेसे उतरकर नीचे बिछी हुई चटाईपर पतिके पाँवोंके पास बैठ गई ; और अपना एक हाथ उसकी गोदपर रखती हुई बोली—"इतनी जल्दी करनेकी जरूरत नहीं। चिट्ठी आज रहने दो। जो कुछ तय करना हो, कल सवेरे करना।"

अम्बिका उत्तेजित होकर कहने लगा—"नहीं, अब एक मिनटके लिए भी बरदाश्त नहीं मुझे।"

इन्द्राणी अपने बाबाके हृदय-मृणालमें एकमात्र कमलकी तरह खिली और पनपी थी। बाबाके हृदयसे जैसे उसने स्नेहरस खींचा था वैसे ही उनके मनमें संचित और भी बहुतसे भाव उसने ले लिये थे। मुकुन्दलालके परिवारके प्रति गौरीशंकरकी जो एक निष्ठा और भक्ति थी, इन्द्राणी यद्यपि उसे पूरी तरह नहीं ले पाई, किन्तु फिर भी इतनी बात उसके मनमें जमकर बैठ गई थी कि प्रभु-परिवारके हितके लिए जीवन अर्पण करना उन लोगोंका कर्तव्य है। उसके सुशिक्षित पति चाहते तो वकालत कर सकते थे, या और कोई भी सम्मानजनक काम कर सकते थे ; किन्तु इन्द्राणीके मनके दृढ़ संस्कारका अनुसरण करके ही वे एकाग्र मन और सन्तुष्ट चित्तसे विनोदकी जमींदारी सम्हालनेमें लग गये थे। इन्द्राणी यद्यपि अपमानकी चोटसे घायल हो गई थी, किन्तु फिर भी इस बातको उसका मन किसी भी तरह ग्रहण न कर सका कि उसके पति जमींदारीका काम छोड़कर अलग हो जायँ।

इन्द्राणीने फिर युक्तियाँ पेश करते हुए नरमाईके साथ मोठे स्वरमें कहा—"इसमें विनोद बाबूका तो कोई दोष नहीं, उन्हें कुछ मालूम ही नहीं ;–उनकी स्त्री पर नाराज़ होकर एक-बएक तुम उनसे क्यों लड़ना चाहते हो ? इससे फायदा ?"

सुनकर अम्बिका ठहाका मारकर हँस पड़ा,– अपना संकल्प उसे इतना हास्यास्पद मालूम पड़ा। बोला—"ठीक बात है ! लेकिन मालिक हों या कोई भी हों, उनके घर अब तुम कभी भी मत जाना।"

बस, इतनी-सी आँधी आकर उस दिनके सब बादलोंको उड़ा ले गई। घरकी आब-हवा प्रसन्न हो उठी ; और पतिके विशेष लाड़-प्यारसे इन्द्राणी बाहरकी सारी कड़ुआहट और बेइज्जतीकी वेदनाको भूल गई।

३

इधर जमींदार विनोदीलालका यह हाल कि अंबिकाचरणपर अपनी जमींदारीका सारा भार सौंपकर खुद बिलकुल निश्चिन्त हैं। सिर्फ निश्चिन्त ही नहीं बल्कि यों कहना चाहिए कि अत्यन्त-निर्भरशील और पराश्रित होनेके कारण कोई-कोई पति घरकी स्त्रीको जैसे लापरवाहीकी दृष्टिसे देखता है, अपनी जमींदारीके प्रति भी विनोदके लगभग वैसा ही उपेक्षाका भाव है। जमींदारीका काम वे कतई नहीं देखते। और, जमींदारकी आय इतनी निश्चित और ऐसी बँधी हुई है कि वह आय-सी मालूम ही नहीं होती ; और इसीलिए उसपर उनका कोई आकर्षण नहीं।

विनोद चाहता था कि किसी-एक छोटे-से सुड़ंगके रास्तेसे वह अकस्मात् ही किसी दिन रात-बिरातको कुबेरके भंडारमें घुस पड़े और वहांसे मनमाना धन ले आवे। और इसीलिए वह तरह-तरहके लोगोंसे गुप्त सलाह करता और नाना प्रकारके विचित्र रोजगारोंमें फँस जाता। कभी तय करता कि हिन्दुस्थानके तमाम बबूलके पेड़ोंका ठेका लेकर बैलगाड़ीके पहिये बनानेका कारखाना खोल दे, कभी सोचता कि सुन्दरबनके तमाम मधुमक्खीके छत्तोंसे शहद इकट्ठा करके सारे भारतमें उसकी सप्लाई करे ; और कभी पश्चिमी प्रान्तोंके जंगलोंका ठेका तय करनेके लिए वहाँ आदमी भेजता, ताकि हर्र-बहेड़ा वगैरहका सारा रोजगार उसके अकेलेके कब्जेमें आ जाय। विनोद मन-ही-मन इस बातको जानता था कि लोग सुनेंगे तो हँसेंगे ; और इसीलिए इन सब बातोंकी वह और-किसीसे भी चर्चा नहीं करता, सारे मामलेको ऐसा पोशीदा रखता कि जैसे भेद खुल जानेपर सब गुड़ गोबर हो हो जायगा। खासकर अम्बिकाचरणसे उसे एक तरहकी झेंप-सी थी। अम्बिकाचरण कहीं ऐसा न खयाल कर बैठे कि इस तरह वह रुपया बिगाड़ रहा है, इस बातका उसे संकोच था। अम्बिकाके सामने वह ऐसे रहता जैसे अम्बिका ही जमींदार हो और वह सिर्फ बैठे रहनेके लिए सालाना एक तनखा-सी पाता हो।

बहूभातके दूसरे ही दिनसे नयनताराने अपने पतिके कानमें मंत्र फूंकना शुरू कर दिया, 'तुम खुद तो कुछ देखते-भालते नहीं, अम्बिका जो-कुछ हाथमें

लाकर रख देता है वही तुम्हारे सिर-माथे है। इधर भीतर-ही-भीतर क्या-क्या सत्यानास हो रहा है, कौन जाने! तुम्हारे मैनेजरकी स्त्री जो-जो जेवर पहनके आई थी वैसे गहने तुम्हारे घर आकर मैंने भी आज तक आँखोंसे नहीं देखे। ऐसे-ऐसे गहने उसे मिलते कहाँसे हैं! इतनी ठसक, इतना मिजाज, आखिर किस बिरतेपर!' इत्यादि तरह-तरहकी अतिरंजित बातें बनाकर और इन्द्राणी उसके घर आकर मझरीसे कैसी-कैसी बोली बोल गई है उसका वर्णन करके पतिको उसने चक्करमें डाल दिया।

विनोद दुर्बल-प्रकृतिका आदमी है। वह बड़ी परेशानीमें पड़ गया। उसे एक तरफ जहाँ दूसरोंपर भरोसा करके रहना अच्छा नहीं लगता, वहाँ दूसरी ओर, कोई भी उसके कानमें सन्देहकी बात भर देता है तो उसपर वह तुरत विश्वास भी कर बैठता है। उसे इस बातका पक्का विश्वास हो गया कि मैनेजर जरूर चोरी करता होगा। खासकर उसकी कल्पना इसलिए और-भी ज्यादा विभीषिका देखने लगी कि वह खुद तो काम देखता नहीं, फिर मैनेजरकी चोरी पकड़े भी तो कैसे, उसका रास्ता क्या है? और सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि मैनेजरसे साफ तौरसे कुछ कह सके, इतनी उसमें हिम्मत नहीं।

उधर अम्बिकाचरणके एकाधिपत्यसे और-सब लोग भीतर-ही-भीतर काफी ईर्ष्या रखते थे। खासकर बामाचरणको, जो कि दूरके नातेसे स्वर्गीय दीवानजीका भानजा लगता है और अपने मामाकी कृपासे ही उसे यहाँ नौकरी मिली थी, अम्बिकासे बहुत ज्यादा विद्वेष था। कारण, रिश्तेदारी वगैरह नाना युक्तियोंसे अपनेको वह अम्बिकाके बराबरीका समझता था, और साथ ही उसके ऐसी धारणा-सी बैठ गई थी कि अम्बिका उसका रिश्तेदार होकर भी महज ईर्ष्याकी वजहसे उसे ऊँची जगह नहीं दे रहा। उसकी राय थी कि पद मिलते ही उस पदके लायक योग्यता अपने-आप ही आ जाती है। खासकर मैनेजरके कामको वह बहुत ही तुच्छ समझता है; कहता है, 'पुराने जमानेमें रथपर जैसे ध्वजा बिराजा करती थी, आजकल आफिसके काममें मैनेजरका भी वही स्थान है; रथ खींचते हैं घोड़े और ध्वजा-महोदया हवामें फहराकर अपनी शान दिखाती हैं।'

विनोद इसके पहले कभी काम-काजके बारेमें कुछ पूछताछ नहीं करता था।

सिर्फ जब उसे अपने व्यक्तिगत व्यापारके लिए अचानक रुपयोंकी जरूरत पड़ती तब गुप्त रूपसे खजांचीको बुलाकर पूछ लिया करता कि 'रोकड़में कितने रुपये हैं ?' और खजांची जब रुपयोंकी तादाद बताता तब जरा बगलें झाँकनेके बाद रुपये माँग बैठता, सो भी ऐसे मानो रुपये किसी औरके हों। खजांची दस्तखत लेकर रुपये दे देता ; और उसके बाद विनोद कुछ दिनों तक अम्बिकासे शरमाता रहता। जहाँ तक बनता अम्बिकासे भेंट न करनेमें ही उसे आराम मिलता।

अम्बिकाचरणको इसकी वजहसे कभी-कभी बड़ी कठनाईका सामना करना पड़ता। कारण, जमींदारके हिस्सेके रुपये जमींदारको देनेके बाद रोकड़में अक्सर अमानती सदर-मालगुजारीके या तनखा आदि खर्चखातेके रुपये जमा रहते ; और वे रुपये दूसरे मद्में खर्च हो जाते तो व्यवस्थामें गरबड़ी पैदा हो जाती। लेकिन विनोद रुपया लेकर चोरकी तरह छिपा-छिपा फिरता। इस बारेमें उससे कुछ पूछने-करनेका मौका नहीं मिलता, पत्र लिखनेपर उत्तर नहीं मिलता ; कारण, उस आदमीमें सिर्फ आँखोंकी शरम ही थी। और किसी तरहकी शरम नहीं थी। इसलिए सिर्फ वह मुकाबिला करनेसे डरता था।

क्रमशः विनोद जब ज्यादती करने लगा तब अम्बिकाचरणको गुस्सा आ गया ; और लोहेके संदूककी चाभी वह खुद अपने पास रखने लगा। विनोदका मनमाने ढंगसे रुपया लेन बिलकुल बन्द हो गया। लेकिन फिर भी, वह ऐसा कमजोर प्रकृतिका आदमी था कि मालिक होकर भी उससे इस विषयमें साफ तौरसे किसी तरहका बलप्रयोग करते न बना। और उधर अम्बिकाकी कोशिश भी व्यर्थ साबित होने लगी। असलमें लक्ष्मी जिससे विमुख हो चुकी हो, लोहेके संदूककी चाभी उसका रुपया नहीं रोक सकती। बल्कि इससे और उलटा ही फल हुआ। पर ये सब बातें पीछे होंगी ; अभी जो सिलसिला चल रहा है, चलने दो।

अम्बिकाचरणके कड़े नियमोंसे विनोद भीतर-ही-भीतर नाराज हो रहा था और झुंझला भी रहा था ; इतनेमें नयनताराने उसके मनमें जो सन्देह पैदा कर दिया उससे उसे बहुत खुशी हुई। चुपके-चुपके भीतर-ही-भीतर वह नीचेके कर्मचारियोंको पास बुला-बुलाकर अम्बिकाकी पोलकी खोज करने लगा। और तब बामाचरण उसका प्रधान गुप्तचर हो उठा।

मुकुन्दलालके जमानेमें दीवान गौरीशंकर आसपासके जमींदारोंकी जमीनपर जबरदस्ती हस्तक्षेप करनेमें नहीं सकुचाते थे। और इस तरहसे उन्होंने दूसरोंकी काफी जमीन हड़प ली थी। पर अम्बिकाचरण कभी भी ऐसे काममें हाथ नहीं डालता। और मामला-मुकदमेकी नौबत आ जाती तो वह यथासाध्य आपसमें समझौता कर लेनेकी कोशिश करता। बामाचरणने इसी बातपर मालिकका ध्यान खींचा। उसने साफ-साफ समझा दिया कि 'अम्बिका बाबू जरूर दूसरी तरफसे रिश्वत खाकर मालिकका ऐसा नुकसान किया करते हैं।' खुद बामाचरणको भी ऐसा ही विश्वास है; जिसके हाथमें सब तरहका अख्तियार है वह बीचमें रिश्वत न खाय इस बातको वह मार डालनेपर भी कबूल नहीं कर सकता।

इस तरह भीतर-ही-भीतर नाना मुखोंसे फूँक पाकर विनोदको संशय-शिखा क्रमशः ऊँची होने लगी; किन्तु वह प्रत्यक्षरूपसे उसका कुछ प्रतीकार करनेकी हिम्मत न कर सका। एक तो आँखोंका लिहाज और दूसरे यह डर कि सारी बातोंका जानकार अम्बिका कहीं उसका गहरा अनिष्ट न कर डाले।

अन्तमें नयनताराने पतिकी इस कायरतासे जल-भुनकर, विनोदकी गैर-जानकारीमें, एक दिन अम्बिकाचरणको बुलाकर परदेकी ओटमेंसे कह दिया—"तुम्हें अब नहीं रखा जायगा। बामाचरणको सब समझाकर तुम चले जाओ।"

अम्बिका आभाससे इस बातको पहलेसे ही समझ गया था कि उसके बारेमें विनोदके दरबारमें आन्दोलन शुरू हो गया है, इसलिए नयनताराकी बातपर उसे विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। उसने उसी वक्त विनोदीलालके पास जाकर पूछा—"आप क्या मुझे कामसे छुट्टी देना चाहते हैं?"

विनोदने अत्यन्त चंचल होकर कहा—"नहीं तो!"

अम्बिकाने फिर पूछा—"मेरे ऊपर सन्देह करनेका क्या आपको कोई कारण मिला है?"

विनोद एकाएक अत्यन्त लज्जित-सा होकर बोला—"नहीं तो, बिलकुल नहीं!"

अम्बिकाचरण नयनतारा-वाली घटनाका जिक्र न करके चुपचाप आफिस लौट

आया। घर पहुँचा तो वहाँ भी उसने इन्द्राणीसे कुछ नहीं कहा। कुछ दिन इसी तरह बीत गये।

कुछ दिन बाद अम्बिकाचरणको इन्फ्लुएन्ज़ा हो गया। बीमारी ज्यादः सख्त नहीं थी ; पर कमजोरीकी वजहसे वह आफिस नहीं जा सका।

उस समय सरकारमें मालगुजारीके रुपये भरने थे ; और, और-और कामोंकी भी भीड़ थी। इसलिए एक दिन सवेरे, रोगशय्यासे उठकर, अम्बिकाचरणको अचानक आफिस जाना पड़ा।

उस दिन किसीको ऐसी उम्मीद नहीं थी कि आज अचानक मैनेजर आ धमकेंगे। सभी कहने लगे, 'आप घर जाइये, आपका शरीर बहुत कमजोर है।' इत्यादि।

अम्बिका अपनी शारीरिक कमजोरीकी बातको उपेक्षामें उड़ाकर अपनी टेबिलपर जा बैठा। आफिसके मुनीम-गुमाश्ते वगैरह सब मानो कुछ घबड़ा-से गये ; और सहसा जरूरतसे ज्यादा मन लगाकर अपना-अपना काम करने लगे।

अम्बिकाने अपनी टेबिलका ड्रावर खोलकर देखा कि उसमें एक भी कागज नहीं! पूछा—"यह क्या?" सब-के-सब ऐसा भाव दिखाने लगे कि जैसे आसमानसे गिरे हों, और, चोर ले गया या भूत ले गया, किसीसे कुछ भी स्थिर करते न बन रहा हो।

इतनेमें बामाचरण बोल उठा—"अजी, इतने बनते क्यों हो सब! सभीको तो मालूम है कि कागजात सब खुद बाबू साहब तलब करके ले गये हैं।"

अम्बिका दबे हुए गुस्सेसे सफेद-फक होकर बोला—"क्यों?"

बामाचरण अपने रजिस्टरमें कुछ लिखता हुआ बोला—"सो हम कैसे बता सकते हैं?"

विनोदीलाल अम्बिकाचरणकी गैरहाजिरीका मौका पाकर, बामाचरणकी सलाहसे नई चाभी बनवाकर, मैनेजरकी प्राइवेट टेबिलमेंसे उसके तमाम कागजात निकाल ले गया था, घर ले जाकर इतमीनानसे जाँच करनेके लिए। चतुर बामाचरणने उस बातको छिपाया नहीं ; कारण, अम्बिका इस तरह

अपमानित होकर कामसे इस्तीफा दे दे, यह बात उसकी इच्छाके खिलाफ नहीं थी।

अम्बिकाचरण ड्रावरका ताला लगाकर काँपती हुई देह लेकर विनोदके पास गया। विनोदने कहला भेजा कि अभी उसके माथेमें जोरका दर्द है। वहाँसे घर पहुँचा; और कमजोरीके मारे सीधा जाकर बिस्तरपर पड़ रहा। इन्द्राणी जल्दीसे दौड़ी आई; और पास आते ही तुरत मानो उसने अपने सारे हृदयसे पतिको ढक लिया। और फिर धीरे-धीरे सब बातें उसने खामोशीके साथ सुन लीं।

पर स्थिर सौदामिनी आज स्थिर न रह सकी। उसकी छाती उफनने लगी; फटे हुए काले बादलों-जैसी बड़ी-बड़ी आँखें उसको फट गईं और उनमें बिजली-सी तड़कने लगी। 'मेरे ऐसे पतिका ऐसा अपमान! इतनी ईमानदारी, इतनी बफादारीका यह नतीजा!'

इन्द्राणीके इस जबरदस्त खामोश गुस्सेको देखकर अम्बिकाका गुस्सा जाता रहा। उसने, देवताके शासनसे जैसे पापोकी रक्षा की जाती है इस ढंगसे इन्द्राणीका हाथ पकड़कर कहा—"विनोद अभी लड़का ही है, स्वभावका कमजोर है, उसपर लोग उसके कान भरते रहते हैं, इसीसे उसका मन चंचल हो उठा है।"

सुनकर इन्द्राणीने अपने दोनों हाथ पतिके गलेमें डालकर उसे अपनी छातीसे लगा लिया; और आवेगके साथ देर तक लगाये रही। सहसा उसकी आँखोंको जलती हुई चिनगारियाँ बुझ-सी गईं और झरझर आँसू झरने लगे। संसारके समस्त अन्यायोंसे, तमाम बेइज्जतियोंसे, अपने बाहुपाशमें खींचकर मानो वह अपने हृदय-देवताको हमेशाके लिए अपने हृदय-मन्दिरमें उठाकर रख लेना चाहती है।

तय हुआ कि अम्बिकाचरण अभी तुरत काम छोड़ देगा। आज किसीने भी कोई प्रतिवाद नहीं किया। लेकिन, जब कि मालिक खुद ही सन्देह करके नौकरीसे उसे बरखास्त करना चाहता है, तो फिर इसमें उसकी शान क्या रही? काम छोड़नेका इरादा करते ही अम्बिकाका गुस्सा जाता रहा, पर सब तरहके काम-काज और आराम-विश्राममें इन्द्राणीका क्रोध उसके हृदयके भीतर-ही-भीतर जलता रहा।

## आखिरी बात

इतनेमें नौकरने आकर खबर दी कि मालिक सा'बके यहाँसे खजांचीजी आये हैं। अम्बिकाने समझा कि विनोदने अपनी स्वाभाविक आँखको शरमकी वजहसे नौकरी छुड़ानेकी बात खुद न कहकर खजांचीके मारफत कहला भेजी है मालूम होता है। इसलिए वह खुद ही एक कागजपर इस्तीफा लिखकर बाहर बैठकमें पहुँचा; और कागज खजांचीके हाथमें थमा दिया।

खजांची उस चिट्ठीके बारेमें कुछ न पूछकर घबराहटके साथ कहने लगा—"सब चौपट हो गया मैनेजर सा'ब, सब चौपट हो गया !"

अम्बिकाने पूछा—"क्या हुआ ?"

जवाबमें जो-कुछ सुना, उसका सार यह है कि 'जबसे अम्बिकाचरणकी सावधानीकी वजहसे खजानेसे रुपया मिलना बंद हुआ तबसे विनोद बाबूने जगह-जगहसे पोशीदा तौरपर रुपया उधार लेना शुरू कर दिया था। एकके बाद एक तरह-तरहके रोजगार-धन्धेमें जितने ही वे ठगाये गये और नुकसानपर नुकसान उठाते गये उतनी ही उनकी जिद जोर पकड़ती गई; और उतने ही संभव-असंभव नये-नये तरीकोंसे वे अपनेको नुकसानसे बचानेकी कोशिश करने लगे, जिसका नतीजा यह हुआ कि अब कर्जमें गले तक डूबे हुए हैं, चारों तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा नजर आ रहा है। अम्बिकाचरण जब बीमार था तब विनोदने उस मौकेसे खजानेसे सब रुपये उठा लिये थे। बाँकागढ़ परगना बहुत दिनोंसे पास-ही-के एक जमींदारके यहाँ रेहन रखा था; अब तक उसने रुपयेके लिए किसी तरहका तकाजा न करके काफी ब्याज जमने दी थी, और अब वह मौका देखकर अचानक डिग्री लानेकी तैयारी कर रहा है।' उल्लिखित 'सब चौपट'का यही इतिहास है।

सुनकर अम्बिकाचरण कुछ देरके लिए सन्न होकर बैठा रहा। अन्तमें बोला—"आज कुछ भी सोचा नहीं जाता मुझसे, कल इस बारेमें बात करूंगा।"

खजांची जब उठने लगा तो अम्बिकाने उससे इस्तीफावाली अपनी चिट्ठी वापस ले ली।

भीतर जाकर अम्बिकाने सारा किस्सा इन्द्राणीको कह सुनाया ; और अन्तमें कहा—"विनोदको ऐसी हालतमें छोड़कर तो इस्तीफा नहीं दिया जा सकता।"

इन्द्रणी बहुत देर तक पत्थरकी मूर्तिकी तरह स्थिर बैठी रही। अन्तमें अपने भीतरके सम्पूर्ण विरोध-द्वन्द्वको अपनी शक्तिसे दबाकर एक गहरी साँस लेती हुई बोली—"नहीं, अभी नहीं छोड़ सकते।"

इसके बाद 'रुपया कहाँ, रुपया चाहिए' की धुनमें चारों तरफ उसीकी खोज होने लगी ; पर जरूरतके माफिक रुपया नहीं मिल सका। घरमेंसे जेवर वगैरह लाकर देनेके लिए अम्बिकाने विनोदपर जोर डाला। इसके पहले भी विनोदने रोजगारके लिए इस तरहकी कई बार कोशिश की थी, पर कभी सफल नहीं हुआ। इस बार भी बहुत अनुनय-विनय किया, बहुत निहोरे किये, काफी दीनता स्वीकार की, गहनोंके लिए भीख भी माँगी ; पर नयनतारापर उसका कोई भी असर न पड़ा। वह सोचने लगी कि उसके तो चारों तरफसे वैसे ही सब-कुछ छूटा जा रहा है, इसे भी दे दे तो उसके पास रह क्या जायगा ; और यह सोचकर उसने अन्तिम आग्रहके साथ जी-जानसे उसे अपनेसे अलग न होने दिया।

जब कहींसे भी रुपयोंका इन्तजाम नहीं हुआ, तो इन्द्राणीकी बदला लेनेकी भावनापर एक तीव्र आनन्दकी ज्योति जग उठी। उसने अपने पतिका हाथ मसकके चुपकेसे कहा—"तुम्हारा जो कुछ कर्तव्य था सो तुम कर चुके, अब तुम छोड़ो इस झंझटको। जो-कुछ होनी है सो होने दो।"

पतिके अपमानसे उद्दीप्त सतीकी क्रोधाग्नि अभी तक बुझी नहीं देखकर अम्बिका मन-ही-मन हँस दिया। चरम संकटके दिनोंमें असहाय बच्चेकी तरह विनोद उसपर ऐसा एकान्तरूपसे निर्भर हो रहा है कि अम्बिकाको उसपर दया आ गई। सोचने लगा, इस समय वह उसे हरगिज नहीं छोड़ सकता। अगर और कोई भी चारा नहीं रहा तो वह अपनी जायदाद रेहन रखके इस संकटसे उसके उद्धारकी कोशिश करेगा।

लेकिन इन्द्राणीने अपने कण्ठकी सौगन्द दिलाते हुए कहा—"अपनी जायदादपर तुम हाथ नहीं लगा सकते।"

अम्बिकाचरण बड़ी दुविधामें पड़ गया। कुछ देर तक गहरी चिन्तामें बैठा रहा। और फिर अहिस्तेसे इन्द्राणीको जितना ही समझानेकी कोशिश करने लगा, इन्द्राणी उतनी ही उसे बात करनेसे रोकने लगी। अन्तमें अम्बिका बहुत ही उदास होकर चुपचाप बैठा रहा।

कुछ देर बाद इन्द्राणी वहाँसे उठी ; और लोहेका सन्दूक खोलकर उसमें से अपना सारका जेवर निकालकर, एक बड़े थालमें उसका ढेर लगाकर, उस भारी-भरकम थालको बड़ी मुश्किलसे दोनों हाथोंपर उठाकर ले आई ; और मुसकराते हुए उसे पतिके पाँवोंके पास रख दिया।

अपने बाबाकी एकमात्र स्नेहकी निधि इन्द्राणीको जन्मसे लेकर ब्याह तक सालों-साल अपने बाबासे इतने कीमती गहने मिलते रहे हैं कि जिसका ठीक नहीं ; और उनके गुजरनेके बाद उसके मिताचारी पतिके जीवनका भी अधिकांश संचय इस सन्तानहीन रमणीके भण्डारमें अलंकारोंके रूपमें रूपान्तरित हुआ है। उन सब सोने और जवाहरातके अलंकारोंको पतिके सामने रखकर इन्द्राणीने कहा—"इन गहनोंसे अपने बाबाके दिये हुए दानका उद्धार करके फिरसे मैं उसे अपने बाबाके ही मालिक-खानदानको दान करना चाहती हूँ।"

कहते हुए उसने अपने नेत्रोंको बन्द करके नतमस्तक हो कल्पना की, उसके सफेद केशधारी, शान्त स्नेहकी हँसी हँसनेवाले, परम बुद्धिमान और गोरे-चिट्टे विशालकाय वृद्ध बाबा सामनेसे आ रहे हैं ; और पास आकर उसके झुके हुए माथेपर शीतल स्नेहका हाथ रखकर चुपचाप उसे आशीर्वाद दे रहे हैं।

बाँकागढ़ परगना फिरसे खरीद लिया गया ; और तब फिर एक दिन अपनी प्रतिज्ञा भंग करके अलंकारहीन इन्द्राणी नयनताराके घर न्योता खाने गई। अब उसके मनमें किसी तरहकी अपमानकी वेदना नहीं रही।

# रासमणिका लड़का

१

रासमणि कालीचरणकी मा थीं ; पर उन्हें मजबूरन बापका पद सम्हालना पड़ा था। कारण मा-बाप दोनों ही जहाँ मा बन जाते हैं वहाँ लड़केके लिए कोई सहूलियत नहीं रह जाती। रासमणिके पति भवानीचरणसे लड़केपर जरा भी शासन करते नहीं बनता।

किसीके यह पूछनेपर कि लड़केपर वे क्यों इतना ज्यादा लाड़ करते हैं, वे जो उत्तर दिया करते, उसे समझनेके लिए पहलेका थोड़ा-सा इतिहास जान लेना जरूरी है।

बात यह है — शानवाड़ीके प्रसिद्ध और पुराने रईस-खानदानमें भवानीचरणका जन्म हुआ है। भवानीचरणके पिता अभयाचरणकी पहली स्त्रीके पुत्र हैं श्यामाचरण। ज्यादा उमरमें स्त्री-वियोगके बाद अभयाचरणने जब दूसरा ब्याह किया तब उनके ससुरने आलन्दी तालुक खास तौरसे अपनी लड़कीके नाम लिखा लिया था। जमाईकी उमरका हिसाब लगाकर उन्होंने मन-ही-मन सोच लिया था कि लड़की अगर विधवा हो गई तो कम-से-कम खाने-पहननेके लिए उसे सौतेले लड़कोंके अधीन तो नहीं रहना पड़ेगा।

लड़कीके पिताने जो कल्पना की थी उसका पूर्वार्ध फलित होनेमें ज्यादा देर नहीं लगी। उनके दौहित्र भवानीचरणके जन्मके कुछ दिन बाद ही उनके जमाईका देहान्त हो गया। उनकी कन्या अपनी खास सम्पत्तिकी अधिकारिणी हो गई, और अपनी आँखोंसे सब-कुछ देख-भालकर वे भी निश्चिन्त होकर परलोक सिधार गये।

श्यामाचरणकी तब उमर हो चुकी थी। उनका बड़ा लड़का भवानीसे साल-भर बड़ा था। श्यामाचरण अपने लड़केके साथ भवानीका भी लालन-पालन करने लगे। भवानीचरणकी माकी सम्पत्तिमेंसे कभी भी उन्होंने एक पैसा

नहीं लिया ; और सालों-साल साफ-साफ हिसाब दाखिल करके बराबर वे सौतेली माँसे रसीद लेते रहे, यह देखकर सभी उनकी सफाई और ईमानदारीपर मुग्ध होते रहे।

वास्तवमें देखा जाय तो, लगभग सभी यही सोचते थे कि इतनी सचाई अनावश्यक है, बल्कि उसे बेवकूफी ही कहा जाय तो ठीक है। अखण्ड पैत्रिक सम्पत्तिका एक हिस्सा दूसरी स्त्रीके हाथ पड़े, गाँववालोंको यह अच्छा नहीं लगा। श्यामाचरण अगर किसी कदर उस्तादीका हाथ दिखाकर उस दस्तावेजको खतम कर देते तो अड़ोस-पड़ोसके लोग उनकी तारीफ ही करते ; और इस काममें सलाह देनेवाले बुद्धिमानोंकी भी कमी नहीं रहती। लेकिन श्यामाचरणने अपने चिरकालीन पारिवारिक अधिकारको खण्डित करते हुए भी अपनी विमाताकी जायदादको ज्योंका त्यों सुरक्षित बनाये रखा।

इसलिए, और अपनी स्वभावसिद्ध स्नेहशीलताके कारण विमाता ब्रजसुन्दरी श्यामाचरणको अपने पुत्रकी तरह ही मानतीं और विश्वास करती थीं। और श्यामाचरण जो उनकी सम्पत्तिको बिलकुल अलग मानकर चलते थे उसपर वे कभी-कभी नाराज भी होती थीं। श्यामाचरणसे अकसर वे कहा करतीं, "बेटा, इस जायदादको तो मैं अपने साथ परलोक नहीं ले जाऊँगी, तुम्हीं लोगोंकी है और तुम्हीं लोगोंकी रहेगी ; मुझे हिसाब दिखानेकी क्या जरूरत !" पर श्यामाचरणने उनकी बातपर कभी ध्यान नहीं दिया।

श्यामाचरण अपने लड़कोंपर बड़ा कड़ा शासन रखते। पर भवानीचरणपर उनका कोई शासन ही नहीं था। यह देखकर सब यही कहा करते कि अपने लड़कोंकी अपेक्षा भवानीसे ही उनका ज्यादा स्नेह है। नतीजा यह हुआ कि भवानीकी पढ़ाई-लिखाई कुछ भी नहीं हुई। और, सम्पत्तिकी देखरेखके विषयमें सदा-बालक रहकर वे भाई साहबके भरोसे ही जिन्दगी बिताने लगे। जायदादके कामके लिए उन्हें कभी कोई फिकर नहीं करनी पड़ती ; सिर्फ बीच-बीचमें एक-एक दिन दस्तखत करने पड़ते, सो करके छुट्टी पा जाते। 'क्यों दस्तखत कर रहे हैं' इस बातको समझनेकी उन्होंने कभी कोशिश भी नहीं की ; कारण, करते भी तो उसमें कृतकार्य होना उनके बूतेके बाहरकी बात थी।

इधर श्यामाचरणका बड़ा लड़का ताराचन्द पिताका सहकारी बनकर सब काम सीखके पक्का हो उठा। श्यामाचरणकी मृत्युके बाद ताराचन्दने भवानीचरणसे कहा—"काका सा'ब, हमारा आपका अब इकट्ठा रहना नहीं हो सकेगा। न-जाने कब किस बातपर झगड़ा हो जाय और फिर घर बरबाद होनेकी नौबत आ जाय, कोई ठीक नहीं ; इसलिए अलग रहना ही ठीक है।"

भवानीचरणने इस बातकी कभी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की कि अलग होकर किसी दिन उन्हें अपनी जायदादको देख-भाल खुद करनी पड़ेगी। जिस घरमें वे बचपनसे ही पले-पनपे हैं उसे वे बिलकुल अखण्ड समझते थे ; उसमें कहीं कोई जोड़ है और वहाँसे उसके दो टुकड़े किये जा सकते हैं– इस नये समाचारसे वे व्याकुल हो उठे।

पुराने रईस खानदानकी बदनामी-बेइज्जती और आत्मीय-स्वजनोंकी मनोवेदना जब ताराचन्दको रंचमात्र भी विचलित न कर सकी तब भवानीचरणको भी मजबूर होकर जायदादके बटवारेके विषयमें असाध्य चिन्तामें प्रवृत्त होना पड़ा। ताराचन्दको उनकी चिन्ता देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ ; उसने कहा—"काका सा'ब, इतनी फिकर आप क्यों कर रहे हैं। बटवारा तो हुआ ही पड़ा है। बाबा सा'ब अपने जीते-जी ही बटँवरा करके सब तय कर गये हैं।"

भवानीचरण हतबुद्धि-से होकर बोले—"ऐसी बात है क्या! मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं।"

ताराचन्दने कहा—"आपको नहीं मालूम! बड़े ताज्जुबकी बात है। दुनियाके लोग जानते हैं, आलन्दी तालुक आपलोगोंके हिस्सेमें देकर बाबा सा'ब पहलेसे ही आपलोगोंको अलग कर गये हैं, ताकि उनके पीछे कोई बखेड़ा न हो। तबसे बराबर इसी तरह चला आ रहा है।"

भवानीचरणने सोचा कि हो सकता है ; पूछा—"और यह मकान?"

ताराचन्दने कहा—"आप चाहें तो, इस मकानको आप ही रख सकते हैं। शहरमें जो कोठी है वह मिल जाय तो हमलोग उसीमें किसी तरह गुजर कर लेंगे।"

ताराचन्द इतनी आसानीसे अपना पैत्रिक घर-द्वार छोड़नेको तैयार है देख कर उसकी उदारतापर भवानीचरणके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। शहरकी कोठी उन्होंने कभी देखी भी नहीं; और न उससे उनका कोई अनुराग ही था।

भवानीचरणने जब अपनी मा ब्रजसुन्दरीसे सब बातें कह सुनाईं तो उन्होंने तकदीरसे हाथ दे मारा; और कहा—"यह कैसी बात! आलन्दी तालुक तो मेरे लिए खास तौरसे अलग दिया गया था, उससे औरोंका क्या ताल्लुक? और उसकी आमद भी ज्यादा नहीं। पैत्रिक सम्पत्तिमें तुम्हारा हिस्सा तुम्हें क्यों नहीं मिलेगा?"

भवानीचरणने कहा—"ताराचन्द कहता है, बापूजी उसके सिवा हमलोगोंको और कुछ दे ही नहीं गये।"

ब्रजसुन्दरीने कहा—"ये सब बातें मैं क्यों सुनने लगी? तुम्हारे बापूजी वसीयतनामेकी दो नकलें छोड़ गये हैं, उनमेंसे एक मेरे लोहेके सन्दूकमें है।"

सन्दूक खोला गया। उसमें आलन्दी तालुकका दानपत्र तो निकला, पर वसीयतनामा नहीं था। किसीने चुरा लिया मालूम होता है।

सलाहकारको बुलाया गया। पुरोहितजीका लड़का बगलाचरण आया। सबोंका कहना है कि बुद्धिमें वह अपनी सानी नहीं रखता। उसके बाप हैं गाँवके मन्त्रदाता और बेटा हो गया मन्त्रणादाता। बाप-बेटोंने मिलकर गाँवके परलोक और इहलोकका काम बाँट लिया है। औरोंके लिए इसका नतीजा चाहे जैसा भी होता हो, पर उनके अपने तईं कोई खास असुविधा नहीं हुई।

बगलाचरणने कहा—"वसीयतनामा नहीं भी मिले तो कोई हर्ज नहीं। बाप-दादोंकी सम्पत्तिमें दोनों भाइयोंका बराबरका हक रहेगा ही, इसमें पूछना ही क्या!"

इतनेमें दूसरी तरफसे एक और वसीयतनामा निकला। उसमें भवानीचरणके हिस्सेमें कुछ लिखा ही नहीं; सारी जायदाद नातियोंको दे दी गई है। और तब अभयाचरणके कोई पुत्र ही नहीं हुआ था।

बगलाको केवट बनाकर भवानीने मुकद्दमाके समुद्रमें अपनी नाव छोड़ दी। बन्दरगाहमें आकर लोहेके सन्दूककी जब परीक्षा की गई तो देखा गया कि लक्ष्मीके वाहनका घोंसला वहाँ बिलकुल सूना पड़ा है; मामूली दो-एक सोनेके पर टूटे पड़े हैं, और कुछ भी नहीं। पैत्रिक सम्पत्ति दूसरे पक्षके हाथमें चली गई। और, आलन्दी ताल्लुकका जो थोड़ा-सा हिस्सा मुकदमेके खरचेमें डूबनेसे बच रहा था उससे किसी कदर गुजर चल सकती है, पुराने खानदानकी इज्जत नहीं बचाई जा सकती। पुराना मकान जो मिल गया उसीको भवानीचरणने अपना अहोभाग्य समझा; और सोचा कि यह उनकी बड़ी-भारी जीत है। ताराचन्द अपने परिवारवर्गको लेकर शहर चला गया। उसके बाद फिर इन दोनों परिवारोंमें किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रह गया।

## २

श्यामाचरणका यह विश्वासघात ब्रजसुन्दरीको शूलकी तरह चुभ गया। श्यामाचरणने पिताका वसीयतनामा चुराकर भाईके साथ ऐसी घृणित दगाबाजी की, और स्वर्गीय पिताके साथ भी विश्वासघात किया, इस बातको वे किसी भी तरह भूल न सकीं। वे जब तक जिन्दा रहीं बराबर गहरी साँस ले-लेकर कहती रहीं, "भगवान देखेंगे!" और भवानीचरणको भी बराबर यह कहकर तसल्ली देती रहीं कि 'मैं कानून-अदालत कुछ भी नहीं समझती, देख लेना, उनका वसीयतनामा एक-न-एक दिन तुम्हें मिलेगा ही।'

माके मुँहसे बार-बार इस तरहकी आशाकी बात सुनते-सुनते भवानीचरणको भी भरोसा हो गया कि वसीयतनामा कहीं नहीं जा सकता, कभी-न-कभी वह मिलेगा ही। वे खुद बिलकुल लाचार थे, इसलिए इस तरहका आश्वास-वाक्य उनके लिए बड़ी-भाड़ी चीज थी। सती-साध्वीकी बात फलेगी ही, जो उनके हककी चीज है वह उन्हें वापस मिलेगी ही, इस बातपर वे पक्का विश्वास करके बैठ गये। और माकी मृत्युके बाद उनका यह विश्वास और भी दृढ़ हो उठा; कारण, मृत्युके विच्छेदमेंसे माका पुण्य-तेज उनके सामने और-भी बड़ा होकर

दिखाई देने लगा। मौजूदा गरीबीकी तंगी और तकलीफोंकी उन्हें कुछ परवाह ही नहीं थी। वे सोचते, यह जो खाने-पहननेकी तंगाई और पुराने चलन-व्योहारका व्यतिक्रम है, यह सब क्षणभंगुर है, दो दिनका खेल है, वक्त आनेपर फिर सब ज्योंका त्यों चलने लगेगा। इसीलिए, पुराने जमानेकी ढकाई धोतियाँ सब फट जानेके बाद जब उन्हें कम कीमतकी मोटी धोती खरीदकर पहननी पड़ी तो उन्हें हँसी आने लगी। पूजाके उत्सवमें भी पुराने जमानेकी-सी धूमधाम न हो सकी, 'नमोनमः' करके दस्तूर पूरा कर लेना पड़ा। अतिथि-अभ्यागतोंने गहरी साँस ले-लेकर पुराने जमानेकी बात छेड़ी। भवानीचरण मन-ही-मन हँसने लगे; और सोचने लगे, ये नहीं जानते कि यह सब थोड़े दिनोंके लिए है, उसके बाद ऐसी धूमधामसे पूजा होगी कि देखकर सब दंग रह जायेंगे। भविष्यके उस निश्चित समारोहको वे इस कदर प्रत्यक्ष देखा करते कि वर्तमानके दुःख-दैन्यपर उनकी नजर ही नहीं पड़ती।

इस विषयमें उनकी बातचीत सुननेवाला मुख्य दरबारी था नटवर नौकर। हर साल मालिक और नौकर मिलकर गरीबीमें बैठे हुए यही सलाह किया करते कि सुदिन आनेपर पूजा-महोत्सव कैसी धूमधामके साथ मनाया जायगा। यहाँ तक कि किन्हें निमन्त्रण देना चाहिए और किन्हें नहीं, और कलकत्तासे नाटकमंडली बुलाई जायगी या नहीं, इस बातपर दोनोंमें प्रबल मतभेद हो जाता और बहस होने लगती। स्वभावसिद्ध अनुदारताके कारण नटवर उस भावी कार्यक्रममें कंजूसी जाहिर करता; और इसलिए मालिककी उसे काफी डाट फटकार सहनी पड़ती। ऐसी घटना अकसर हुआ करती।

कहनेका मतलब यह कि अपनी जायदादके सम्बन्धमें भवानीचरणके मनमें कोई खास दुश्चिन्ता नहीं थी, उन्हें सिर्फ एक बातका उद्वेग था, वह यह कि कौन उनकी सम्पत्तिको भोगेगा। आज तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई। विवाह-योग्य लड़कियोंके बाप हितैषी बनकर उनके पास आते और दूसरा ब्याह करनेकी सलाह देते तो उनका मन जरा-कुछ चंचल हो उठता। इसका कारण यह नहीं कि नववधूके विषयमें उन्हें कोई खास शौक हो, बल्कि इसलिए कि सेवक और अन्न-वस्त्रकी तरह स्त्रीको भी वे पुरानी पद्धतिके अनुसार ऐश्वर्यमें ही शामिल

समझते। लेकिन जिसके ऐश्वर्यकी सम्भावना तो हो और सन्तानकी सम्भावना न हो, तो उसे वे भाग्यको विडंबना ही समझते।

इसी अरसेमें उनके पुत्र हुआ, तो सब कहने लगे, 'अब इस घरका भाग्य चमकेगा। स्वयं बड़े-बाबू स्वर्गीय अभयाचरणने दुबारा इस घरमें जन्म लिया है; ठीक वैसी ही बड़ी-बड़ी आँखें हैं, वही चितवत है।' लड़केकी जन्मपत्रीमें भी देखा गया कि ग्रह-नक्षत्रोंका ऐसा संजोग बैठा है कि खोई हुई सम्पत्ति आये बगैर रह ही नहीं सकती।

लड़का होनेके बादसे ही भवानीचरणके स्वाभावमें कुछ-कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगा। अब तक गरीबीको वे मायाका एक खेल समझकर उसे बड़ी आसानीसे झेलते आये थे, पर बच्चेके बारेमें उनसे उस भावकी रक्षा करते नहीं बना। शानवाड़ीके सुप्रसिद्ध चौधरियोंके घरमें निर्वाणप्राय कुल-प्रदीपको उज्ज्वल बनाये रखनेके लिए सम्पूर्ण ग्रह-नक्षत्रोंकी आकाशव्यापी अनुकूलतामें जो शिशु धराधाममें अवतीर्ण हुआ है, आखिर उसके प्रति भी उनका कुछ कर्त्तव्य है। आज तक धारावाहिक रूपसे बराबर इस परिवारमें पुत्र-सन्तानोंको आजन्मकालसे जो सम्मान और आदर मिलता रहा, भवानीचरणका ज्येष्ठ पुत्र हो पहले-पहल उससे वंचित हो रहा है – इस वेदनाको वे किसी भी तरह भूल नहीं सके। खानदानके नियमानुसार हमेशासे मिलते-आये सुखसे अपने लड़केको वंचित रखनेके अपने अपराधको वे बहुत बड़ा करके देखने लगे और मन-ही-मन कहने लगे, 'मैंने ही इसे धोखा दिया।' और इसलिए, रुपये खर्च करके बच्चेके लिए जो-कुछ कर सकते थे उसे वे हदसे ज्यादा लाड़-प्यार करके पूरा करनेकी कोशिश करने लगे।

पर, भवानीचरणकी स्त्री रासमणि कुछ दूसरे ही ढाँचेकी थीं। उनके मनमें चौधरी-घरानेके वंश-गौरवके विषयमें कभी भी कोई दुश्चिन्ता उद्वेग या रंज पैदा नहीं हुआ। भवानीचरणको यह बात मालूम थी; और इसके लिए वे मन ही मन हँसते और सोचते कि रासमणि जैसे मामूली घरमें पैदा हुई है उसके देखे वह क्षमाके ही योग्य है; चौधरी-घरानेकी मान-मर्यादाके सम्बन्धमें ठीक-ठीक धारणा करना उसके कयासके बाहरकी बात है।

रासमणि खुद भी इस बातको मंजूर करतीं कि 'मैं गरीब-घरकी लड़की हूँ, मान-मर्यादासे मेरा क्या लेन-देन? मेरा तो कालीचरण बना रहे, वही है मेरा तो जो-कुछ है सो।' खोया हुआ वसीयतनामा फिर मिलेगा और कालीचरणके जरिये इस वंशकी लुप्त सम्पदाकी सूखी नदीमें फिरसे बाढ़ आयेगी, ये सब बातें वे इस कान सुनतीं और उस कान निकाल देतीं। और उधर पतिका यह हाल कि गाँवमें ऐसा कोई आदमी ही नहीं बचा जिससे उन्होंने खोये-हुए वसीयतनामेके बारेमें बातचीत न की हो। सिर्फ एक स्त्रीसे ही वे इस विषयमें कोई बातचीत नहीं कर सके। दो-एक बार कोशिश की भी थी, पर कोई रस न मिलनेसे उन्हें मन मानकर रह जाना पड़ा। अतीत महिमा और भावी ऐश्वर्य इन दोनों ही विषयोंमें रासमणिका मन अत्यन्त उदासीन था, कारण उपस्थित आवश्यकताओंकी चिन्ताने उनके मनको पूरी तरह जकड़ रखा था।

उपस्थित आवश्यकताएँ कम नहीं थीं। बड़ी मुश्किलोंसे गृहस्थीको गुजर करनी पड़ती है। कारण, लक्ष्मी खुद तो बड़ी आसानीसे चली जाती हैं, पर पीछे बोझा इतना ज्यादा छोड़ जाती हैं कि बेचारे वाहकोंसे ढोते नहीं बनता; तब उपाय कुछ नहीं रहता किन्तु अपाय काफी रह जाता है। इस परिवारका आश्रय लगभग टूट चुका है, पर आश्रित लोग अब भी उसका पिण्ड नहीं छोड़ना चाहते। और, भवानीचरण भी ऐसे आदमी नहीं कि तंगीके डरसे किसीको विदा कर दें।

इस भारी बोझसे दबी हुई टूटी-फूटी गृहस्थीको चलानेका सारा भार है रासमणिपर। किसीसे भी उन्हें कोई खास मदद नहीं मिलती। कारण, इस घरकी हालत जब अच्छी थी तब प्रायः सभी आश्रित आराम और आलसमें बड़े मजेसे दिन बिताते रहे हैं। चौधरी-वंशके महावृक्षके नीचे इनकी सुख-शय्यापर छाया अपने-ही-आप आ पड़ती थी, इसके लिए किसीको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। आज इनसे किसी तरहका काम करनेके लिए कहा जाता है तो वे अपना भारी अपमान समझने लगते हैं। रसोईघरका धुआँ लगता है तो उनका सिर दुखने लगता है; और कहीं जरा चलने-फिरनेका

काम पड़ गया तो इतने जोरका गठियाका दर्द शुरू हो जाता है कि फिर उसमें आयुर्वेदका कीमतसे कीमती तेल भी कुछ काम नहीं करता। इसके सिवा एक बात और है, भवानीचरणका कहना है कि 'आश्रयके एवजमें आश्रितोंसे अगर काम ही लिया गया तो वह नौकरीसे भी बदतर है, उससे आश्रयदानका महत्त्व ही जाता रहता है; चौधरी खानदानमें ऐसा कभी नहीं हुआ।'

लिहाजा, जो कुछ करना है सो सब रासमणि ही करें, एक उन्हींपर सारी जिम्मेवारी है। दिन-रात नाना कौशल और कठोर परिश्रमसे इस खानदानकी सारी जरूरतोंको वही चुपचाप गुप्तरूपसे मिटाती रहतीं। और इस तरह दिन-रात गरीबीके साथ जूझकर बड़ी मुश्किलोंसे खींचातानी करके अपनी और दूसरोंकी गुजर करते रहनेसे आदमी स्वतः ही अत्यन्त कठिन हो उठता है, उसकी कमनीयता बिलकुल जाती रहती है। उसपर मुसीबत यह कि जिनके लिए वे कदम-कदमपर खट-खटके मरी जाती हैं वे ही उन्हें बरदाश्त नहीं कर सकते। रासमणिको सिर्फ रसोईमें जाकर रसोई बनाके ही छुट्टी मिल जाती हो सो बात नहीं, बल्कि नमकसे लेकर चावल-दाल-घी तक सब-कुछ जुगाड़ करनेकी जिम्मेदारी भी उन्हींपर है। फिर भी, मजा यह कि उस अन्नसे परितृप्त होकर प्रतिदिन दोपहरको जो निश्चिन्त होकर आरामसे सोया करते हैं वे उस अन्नकी भी निन्दा करते हैं और अन्नदाताकी भी।

रासमणिको सिर्फ घरका ही काम-काज नहीं करना पड़ता,—किसानोंसे लेन-देन और बची-खुची थोड़ी-सी जमीन-जायदादका हिसाब-किताब सब-कुछ उन्हींको करना पड़ता है। लेन-देनके विषयमें इतनी कसाकसी पहले कभी भी नहीं थी जितनी अब है; कारण, भवानीचरणका रुपया अभिमन्युसे ठीक उलटा है; वह सिर्फ निकलना ही जानता है, घुसनेकी विद्या उसे कतई नहीं आती। रुपयोंके लिए कभी भी किसीसे तकाजा करना उनके स्वभावमें ही नहीं लिखा। और रासमणि लेन-देनके विषयमें इतनी खरी हैं कि वहाँ एक दमड़ीकी भी रिआयत नहीं। इसके लिए किसान आपसमें उनकी निन्दा करते; और गुमाश्ते भी इस तरहकी सावधानीको मालिकिनके खानदानका ओछापन बताकर मनमानी समालोचना करते रहते। और तो क्या, कभी-कभी उनके पति तक

इस तरहकी कंजूसी और कर्कशताको अपने जगत्प्रसिद्ध खानदानके लिए मान-हानिकर बताकर थोड़ी-बहुत नाराजी दिखाने लगते। किन्तु इन सब निन्दा और नाराजियोंकी पूरी तरह उपेक्षा करके रासमणि अपना काम अपने नियमानुसार करती ही रहतीं, सारे दोष अपने ही ऊपर ले लेतीं; और बार-बार इस बातको कबूल करती हुई कि 'मैं गरीब-घरकी लड़की ठहरी, अमीरी चाल-चलन कुछ जानती नहीं', घर और बाहर सर्वत्र सबकी अप्रिय होकर, आँचल कमरसे लपेटकर आँधीकी-सी तेजीसे सब काम-काज करती रहतीं; किसीको सामने आकर रोकने-करनेकी हिम्मत ही नहीं पड़ती।

पतिको किसी दिन किसी कामके लिए बुलाना-कहना तो दूर रहा, बल्कि उनके मनमें तो बराबर इस बातका डर ही बना रहता कि कहीं वे अपनी चलानेके लिए किसी काममें हस्तक्षेप न कर बैठें। लगभग सभी विषयोंमें रासमणि यह कहकर अपने पतिको निरुद्यमी बनाये रखतीं कि 'तुम्हें फिकर करनेकी जरूरत नहीं, मैं सब सम्हाल लूँगी।' पति भी आजन्मकालसे इस विषयमें खूब अभ्यस्त थे, इसलिए कम-से-कम इन बातोंमें स्त्रीको ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ती। रासमणिके बहुत उमर तक कोई सन्तान नहीं हुई, इसलिए अपने अकर्मण्य सरलप्रकृति परमुखापेक्षी पतिसे ही उनके दाम्पत्य प्रेम और मातृस्नेह दोनोंकी पूर्ति हो जाया करती थी। भवानीचरणको वे बड़ी उमरका बालक ही समझती थीं। इसीलिए, सास मरनेके बादसे घरकी मालिक और गृहिणी दोनोंका काम उन्हें अकेले ही करना पड़ता है। गुरुजीके पुत्र तथा और-और विपत्तियोंसे पतिको रक्षा करनेके लिए उन्हें इतनी कठोरतासे चलना पड़ता कि उनके पतिके साथी-संगी भी उनसे काफी डरा करते। अपने जीवनमें उन्हें कभी मौका ही नहीं मिला कि वे नारीसुलभ शर्म-संकोच करके अपनी प्रखरताको छिपातीं या साफ बातोंकी धारको जरा नरम करतीं, या पुरुषवर्गसे अपनेको बचाके चलतीं।

अब तक भवानीचरण उनके कहनेपर ही चलते थे। पर अब, पुत्र कालीचरणके सम्बन्धमें रासमणिका कहना मानना उनके लिए कठिन हो गया।

इसकी वजह यह कि रासमणि भवानीचरणके पुत्रको भवानीचरणकी नजरसे नहीं देखतीं। अपने पतिके संबन्धमें वे सोचतीं कि बेचारे करें भी तो क्या करें,

उनका दोष ही क्या है, उन्होंने बड़े घरमें जन्म लिया है, — उपाय क्या है ? इसलिए वे आशा ही नहीं करतीं कि उनके पति किसी तरहकी तकलीफ उठायें। इसीसे हजार कमी होनेपर भी वे जी-जानसे कोशिश करके पतिकी अभ्यस्त आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें कोई बात उठा नहीं रखतीं। उनके घरमें, बाहर-वालोंके लिए हिसाब बिलकुल तंग और कसा हुआ था, किन्तु भवानीचरणके आहार-व्यवहारमें प्राचीन नियमोंमें जरा भी फरक नहीं आने दिया जाता। किसी दिन बहुत ही ज्यादा तंगी आ जानेपर अगर किसी बातमें कोई कमी करनी भी पड़ती तो रासमणि उसे पतिको नहीं जानने देतीं; मौका पड़नेपर वे यह कहने में भी नहीं चूकतीं कि 'इस कुत्तेके मारे तो नाकमें दम है, मुँह डालकर सब बिगाड़ दिया कमबख्तने!' कहकर अपनी कल्पित असावधानीके लिए अपनेको धिक्कारने लगतीं। धोतीकी जरूरत पड़नेपर नालायक नटुआ नौकरकी बेवकूफी पर झींकने लगतीं, 'कल धोती मंगाई है और आज खो दी गधेने!' भवानीचरण तब अपने प्रिय नौकरका पक्ष लेकर गृहिणीके क्रोधसे उसे बचानेके लिए चंचल हो उठते। यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि जो धोती गृहिणीने कभी खरीदी ही नहीं, भवानीचरणने कभी आँखोंसे भी नहीं देखी, और जिस काल्पनिक धोतीके खो डालनेके कसूरमें नटवर मुलजिम बना हुआ है, उस धोतीके विषयमें भवानीचरणने बड़ी आसानीसे मंजूर किया है कि वह धोती नटुआने उन्हें चुनकर दी तो थी और उन्होंने पहनी भी थी, फिर, — फिर क्या हुआ, सो उनकी कल्पनामें नहीं आया; और उसे रासमणिने पूरा करते हुए कहा है, "जरूर तुम उसे बाहरवाली बैठकमें छोड़ आये होगे, वहाँ जिसकी मरजी होती है आता-जाता है, कोई चुरा ले गया होगा।"

भवानीचरणके लिए ऐसी व्यवस्था थी। किन्तु अपने लड़केको वे किसी हालतमें पतिके बराबरीका नहीं समझतीं। वह तो उन्हींकी पेटकी सन्तान है, उसके लिए रईसी किस कामकी! उसे होना चाहिए मजबूत और समर्थ; वह आसानीसे तकलीफोंका मुकाबिला करेगा और मेहनत-मजूरी करके पेट भरेगा। उसके लिए यह बात हरगिज शोभा नहीं दे सकती कि यह चाहिए और वह चाहिए। कालीचरणके लिए खाने-पीने-पहननेकी व्यवस्था भी अत्यन्त मामूली

थी। कलेवाके लिए उसे चना-चूड़ा-गुड़ मिलता था और शीत-निवारणके लिए एक दुलाई, जिससे सिर-कान सब-कुछ ढका जा सकता था। पाठशालाके पण्डितजीको बुलवाकर उन्होंने खुद उनसे कह दिया कि 'लड़केकी पढ़ाईमें जरा भी ढील नहीं होनी चाहिए, अपनी खास देखरेखमें रखकर कड़ाईसे काम लीजियेगा, ताकि पढ़-लिखकर होशियार हो।'

बस, यहीं मुश्किल हो गई। भोले-स्वभावके भवानीचरणमें कभी-कभी विद्रोहका लक्षण दिखाई देने लगा, लेकिन रासमणि उसे देखकर भी अनदेखा कर देतीं। भवानीचरण प्रबल पक्षके आगे हमेशा हार मानते आये हैं; अबकी बार भी हार मान ली, पर अपने मनसे वे इस विरोधको बिलकुल दूर न कर सके। इस घरानेका लड़का दुलाई ओढ़े और चना-चूड़ाका जलपान करे — ऐसी अनसुनी अनदेखी बात आदमीसे रोज-रोज कहाँ तक बरदाश्त हो सकती है?

पूजाके दिनोंकी उन्हें याद है। बाप-दादोंके जमानेमें बढ़ियासे बढ़िया नये-नये कपड़े पहनकर कैसे उत्साहके साथ वे उत्सवमें शामिल हुआ करते थे। और आज, आज रासमणि कालीचरणके लिए ऐसे सस्ते कपड़े मँगाती हैं कि उस जमानेमें उनके घरके नौकर-चाकर भी उनपर ऐतराज करते। रासमणिने पतिको बहुत दफे समझानेकी कोशिश की है कि 'कालीचरणको जो कुछ दिया जाता है उसीमें वह खुश रहता है, उसे तो पुराने जमानेकी कोई बात मालूम नहीं, फिर तुम क्यों फजूलमें मनमें दुख किया करते हो।' मगर भवानीचरण इस बातको किसी भी तरह भूल ही नहीं पाते कि बेचारा कालीचरण अपने वंश-गौरवको जानता नहीं, इससे उसे ठगा जा रहा है। भवानीचरणके हृदयको सबसे ज्यादा ठेस तब लगती है जब कि वह जरा-सी कोई उपहारकी चीज पाते ही मारे गर्व और खुशीके नाचता-उछलता हुआ, दिखानेके लिए, उनके पास दौड़ा आता है। उनसे यह दृश्य देखा नहीं जाता। वे मुँह फेरकर वहाँसे उठ जाते हैं।

भवानीचरणका मुकदमा चलानेके बादसे उनके गुरुजीके घर काफी पैसा बढ़ गया है। फिर भी, उससे सन्तुष्ट न होकर, इधर कई सालोंसे पूजाके मौकेपर

गुरुपुत्र बगलाचरण कलकत्तासे नाना प्रकारके चटकदार विलायती खिलौने और शौककी चीजें लाकर दुकान खोल दिया करते हैं। उन चीजोंको देखकर गाँवके लड़कों और नर-नारियोंका मन चंचल हो उठता है। और, कलकत्ताके बाबू लोगोंमें आजकल उनका काफी चलन है सुनकर गाँवके लोग अपनी ग्रामीणता दूर करनेकी गरजसे बूतेसे ज्यादा खर्च करके उन्हें खरीदा करते हैं।

एक बार बगलाचरण एक आश्चर्यकारी मेमकी गुड़िया ले आये। उसमें चाभी भर देनेसे मेम चौकीसे उठकर जोरसे पंखा हिला-हिलाकर हवा खाने लगती है। इस हवा खानेवाली गुड़िया-मेमको देखकर कालीचरणका मन ललचा आया; और उसे पानेके लिए वह व्याकुल हो उठा। अपनी माको वह अच्छी तरह पहचानता था, इसलिए मासे कुछ न कहकर वह सीधा भवानी-चरणके पास पहुँचा, और उनसे अपने मनकी बात कही। भवानीचरणने उसी वक्त उदारताके साथ उसे तसल्ली देते हुए कहा कि वे गुड़िया ला देंगे। लेकिन उसके दाम सुनकर उनका चेहरा सूख गया।

रुपये-पैसे वसूल करना रासमणिके हाथमें है, रोकड़ भी उन्हींके पास रहती है। भवानीचरण भिखारीकी तरह अपनी अन्नपूर्णाके द्वारपर पहुँचे। पहले काफी इधर-उधरकी अप्रासंगिक बातें कीं, और फिर अन्तमें चटसे अपने मनकी बात कह डाली। रासमणिने अत्यन्त संक्षेपमें जवाब दिया—"तुम्हारा दिमाग खराब हो गया क्या!"

भवानीचरण चुपचाप कुछ देर तक सोचते रहे। उसके बाद सहसा कह बैठे—"अच्छा देखो, भातके साथ तुम जो रोज मुझे घी और खीर दिया करती हो, उसकी क्या जरूरत है?"

रासमणिने कहा—"जरूरत क्यों नहीं!"

भवानीचरणने कहा—"वैद्यजी कहते हैं कि उससे पित्त बढ़ता है।"

रासमणिने तेजीसे सिर हिलाकर कहा—"तुम्हारे वैद्यजी तो सब जानते हैं!"

भवानीचरणने कहा—"मैं तो कहता हूँ कि रातको पूड़ी बन्द करके भात किया करो तो अच्छा हो। पूड़ियोंसे पेट भारी हो जाता है।

रासमणिने जवाब दिया—"पेट भारी होनेसे आज तक तो तुम्हें कोई नुकसान नहीं हुआ। रातको बराबर ही तो पक्की रसोई खाते आये हो।"

भवानीचरण सब तरहसे त्याग स्वीकार करनेको तैयार थे; लेकिन गृहिणीकी तरफसे इतनी कड़ाई थी कि उन्हें चुप रह जाना पड़ा। घीका भाव दिनों दिन बढ़ता जा रहा है, फिर भी पूड़ियोंकी संख्यामें कोई फर्क नहीं आया। दोपहरके भोजनमें जब कि खीर बनती ही है तो बगैर दहीके भी काम चल सकता था; लेकिन चूँकि इस घरके बाबू लोग बराबर ही दही और खीर खाते आये हैं, इसलिए उसमें रद्दोबदल नहीं हो सकता। किसी दिन भवानीचरणके भोगमें दहीकी कमी पड़ जाती तो रासमणिके लिए वह त्रुटि असह्य हो जाती। लिहाजा, अपने हाथसे पंखेकी हवा खानेवाली उस मेम-साहिबाका भवानीचरणके घी-दही-खीर-पूड़ीके किसी भी सूराखसे इस घरमें प्रवेश न हो सका।

भवानीचरण एक दिन अपने गुरु-पुत्रके घर ऐसे जा पहुँचे जैसे यों ही घूमते-फिरते हुए आ गये हों; और इधर-उधरकी बहुत-सी अप्रासंगिक बातचीत करनेके बाद अन्तमें उन्होंने उस गुड़ियाकी बात पूछी। और यह जानते हुए भी कि उनकी मौजूदा आर्थिक स्थिति बगलाचरणसे छिपी नहीं, इस बातका आभास देते हुए मारे संकोचके वे गड़-गड़ जाने लगे कि उनके पास रुपये न होनेसे अपने लड़केके लिए आज वे एक मामूली-सी गुड़िया भी नहीं खरीद सकते। फिर भी दुःसह संकोचको दबाते हुए उन्होंने अपने दुपट्टे मेंसे कपड़ेमें लिपटा हुआ बेशकीमती कश्मीरी जामेवार-दुशाला निकाला; और लगभग रुँधे हुए कण्ठसे कहा—"समय बहुत ही खराब है, हाथमें नगद रुपये ज्यादा नहीं हैं, इसीसे सोचा कि यह दुशाला तुम्हारे पास गिरवी रखकर लड़केके लिए गुड़िया खरीद ले जाऊँ।"

दुशालेसे कम कीमतकी कोई चीज होती तो बगलाचरणको कोई दुविधा ही नहीं होती; वह जानता है कि इसे हजम करना कठिन है। गाँवके लोग तो निन्दा करेंगे ही, उसके अलावा रासमणिकी रसनासे जो कुछ निकलेगा वह सरस न होगा। लिहाजा, दुशालेको दुपट्टेमें छिपाकर भवानीचरणको निराश होकर वापस आना पड़ा।

कालीचरण बापसे रोज पूछता—"बापूजी, उस मेमका क्या हुआ?" और भवानीचरण रोज ही हँसते हुए कहते—"ठहरो, अभी क्या है। पूजाके दिन तो आने दो!"

लेकिन रोजमर्रा चेहरेपर जबरदस्ती हँसी लाकर बच्चेको तसल्ली देना उनके लिए दुःसाध्य हो उठा। आज चौथ है; सप्तमीको कुल तीन दिन बाकी हैं। भवानीचरण किसी बहानेसे असमयमें अन्तःपुरमें पहुंचे। बातचीतके सिलसिलेमें अकस्मात् ही बोल उठे—"देखो, कई दिनसे मैं देख रहा हूँ, कालीचरणकी तनदुरुस्ती इधर दिनों-दिन गिरती ही जाती है।"

रासमणिने कहा—"भगवान न करें। उसकी तनदुरुस्ती क्यों बिगड़ने लगी? मैं तो रोज देखती हूँ, ठीक तो है।"

भवानीचरणने कहा—"देखतीं नहीं। चुपचाप मुरझाया हुआ-सा बैठा रहता है। न-जाने क्या सोचा करता है!"

रासमणि बोलीं—"घड़ी-भर भी अगर वह चुप बैठा रहता, तब तो कहना ही क्या था। उसे किस बातकी फिकर! कहाँ क्या शरारत करनी है यही सोचा करता होगा।"

किलेकी दीवारमें इधर भी कोई कमजोर जगह नहीं पाई गई; पत्थरपर गोलेका दाग भी न लगा। एक गहरी साँस लेकर माथेपर हाथ फेरते हुए भवानीचरण बाहर चले आये। और अकेले चबूतरेपर बैठकर खूब कसके तम्बाकू पीने लगे।

पंचमीके दिन उनकी थालीमें खीर और दही ज्योंका त्यों पड़ा रहा। रातको एक सन्देश खाकर ही उठ गये, पूड़ी छुई तक नहीं। बोले—"भूख बिलकुल नहीं है।"

अबकी बार किलेकी दीवारमें एक बड़ा-भारी छेद दिखाई दिया। छठके दिन रासमणिने खुद कालीचरणको एकान्तमें बुलाकर प्यारका नाम लेकर कहा—"मण्टू, अब तुम बड़े हो गये हो बेटा, अब भी हर चीजके लिए जिद करना तुमने नहीं छोड़ा! बुरी बात है। जो चीज मिल नहीं सकती, उसपर लालच करना आधी-चोरी है, जानते हो!"

कालीचरणने मिनमिनाते हुए कहा—"मैं क्या जानूँ। बापूजीने कहा था कि वे ला देंगे।"

इसपर रासमणि 'बापूजी'के कहनेके मानी क्या हैं, सो समझाने लगीं। पिताके उस कहनेमें कितना स्नेह, कितना प्यार और कितनी वेदना भरी है, और उनके उस ला देनेमें अपने इस गरीब घरका कितना नुकसान और दुःख है, सब समझाने लगीं। रासमणिने आज तक इस तरह कभी भी कोई बात कालीचरणको नहीं समझाई। वे जो कुछ करतीं, अत्यन्त संक्षेपमें और अपने बूतेके जोरसे ही करतीं; किसी आदेशको नरम करनेकी उन्हें कभी कोई जरूरत ही नहीं पड़ी। इसलिए, कालीचरणको आज जो उन्होंने इस तरह मिन्नतके साथ इतने विस्तारसे समझाया, इससे वह अचंभेमें पड़ गया; और माके मनमें उसके लिए एक जगह जो इतना दर्द है, बालक होनेपर भी वह इस बातको समझ गया। लेकिन, मेमकी तरफसे एक क्षणके लिए भी अपने मनको हटाना उसके लिए कितना कठिन था, समझदारोंको समझानेकी जरूरत नहीं। कालीचरणका मुँह फूल गया, वह एक लकड़ी उठाकर जमीन कुरेदने लगा।

तब, रासमणि फिर कठोर हो उठीं; और कठोर स्वरमें बोलीं—"चाहे तुम गुस्सा होओ चाहे रोओ-पीटो, जो चीज मिलनेकी नहीं, सो हरगिज नहीं मिल सकती।" इतना कहकर और व्यर्थ समय नष्ट न करके वे तेजीसे अपने कामसे चली गईं।

कालीचरण बाहर चला आया। भवानीचरण उस समय अकेले बैठे तम्बाकू पी रहे थे। दूरसे लड़केको देखते ही वे जल्दीसे उठकर ऐसे चल दिये जैसे किसी जरूरी कामसे उन्हें कहीं जाना हो। कालीचरण दौड़ा आया और बोला—"बापूजी, मेरी वो मेम—"

आज लेकिन भवानीचरणके मुँहसे हँसी नहीं निकली। कालीचरणको प्यारसे अपनी ओर खींचकर बोले—"जरा ठहर जा बेटा, एक जरूरी काम है, निबटा आऊँ, तब बात करूँगा, अच्छा!"

इतना कहकर वे जल्दीसे बाहर चले गये। कालीचरणको ऐसा लगा कि उसके 'बापूजी' जाते-जाते दुपट्टेसे आँसू पोंछ रहे हों।

उस समय पड़ोसमें एक घरके दरवाजेपर परीक्षाके तौरपर शहनाई सुनी जा रही थी। सवेरेकी उस शहनाईके करुण सुरमें शरतकी नई धूप मानो छिपे हुए आँसुओंके भारसे व्यथित हो रही थी। कालीचरण अपने घरके दरवाजेके पास खड़ा हुआ रास्तेकी तरफ देखता रहा। उसके 'बापूजी' कहीं भी किसी कामसे नहीं जा रहे हैं, यह बात उनकी चालसे ही समझी जा सकती है। हर कदमपर मानो वे नैराश्यका जबरदस्त बोझ ढोते जा रहे हैं, और कहीं भी मानो उन्हें ऐसी जगह ढूँढ़े नहीं मिल रही है जहाँ बोझ पटककर जरा आरामकी साँस ले सकें।

कालीचरणने भीतर जाकर मासे कहा—"मा, मुझे वो हवा करनेवाली मेम नहीं चाहिए।"

मा उस समय सरौंता हाथमें लिये जल्दी-जल्दी सुपारी कतर रही थीं। उनका चेहरा चमक उठा। मा-बेटोंमें वहाँ बैठे-बैठे क्या सलाह-मशविरा होता रहा, कोई न जान सका। सरौंता और सुपारियोंकी टोकनी जहाँकी तहाँ छोड़कर रासमणि उसी वक्त उठके बगलाचरणके घर चल दीं।

आज भवानीचरणको घर लौटनेमें बहुत अबेर हो गई। नहा-निबटकर जब वे खाने बैठे तब उनका चेहरा देखकर ऐसा लगा कि आज भी शायद दही और खीरकी सद्गति नहीं होगी और मछलीके झोरपर उनकी पालतू बिल्लीका ही एकाधिपत्य होगा।

इतनेमें, रस्सीसे बँधा हुआ एक कागजका बकस हाथमें लिये रासमणि आ पहुँचीं; और पतिके सामने बैठ गईं। उनकी इच्छा थी कि भवानीचरण जब आराम करने जायँगे तभी इस रहस्यका उद्घाटन करेंगी; मगर दही और खीरका अनादर दूर करनेके लिए उन्हें इतनी जल्दी करनी पड़ी। बकसमेंसे निकालकर जमीनपर रखते ही मेम साहिबा अपनी गरमी दूर करनेके लिए जोरसे हवा खाने लगीं। बिल्लीको आज हताश होकर वापस जाना पड़ा। भवानीचरणने गृहिणीसे कहा—"आज रसोई बहुत उमदा बनी है। बहुत दिनोंसे ऐसा खाना नहीं खाया। खीर तो आज कमालकी बनी है।"

छमीके दिन कालीचरणको अपनी बहुत दिनोंकी ख्वाहिशकी चीज मिल

गई। उस दिन वह दिन-भर मेमका हवा खाना देखता रहा; और अपने साथियोंको दिखा-दिखाकर उनमें ईर्षाका भाव पैदा करने लगा। और-किसी हालतमें होता तो शायद काठकी मेमका लगातार इस तरह हवा खाना देखकर उसका जी ऊब जाता, मगर चूंकि अष्टमीके दिन वह वापस चली जायगी इसलिए उसकी दिलचस्पी ज्योंकी त्यों बनी रही। रासमणि अपने गुरुपुत्रको नगद दो रुपया देकर सिर्फ एक दिनके लिए मशीनकी गुड़िया किरायेपर ले आई थीं। अष्टमीके दिन कालीचरणने एक गहरी साँस ली और अपने हाथसे बकस समेत मेम बगला चरणको वापस कर आया। इस एक दिनके मिलनकी सुखस्मृति बहुत दिनों तक उसके मनमें जागरूक बनी रही, उसके कल्पनालोकमें मेमका पंखा शायद ही कभी बन्द हुआ हो।

अबसे कालीचरण माको मंत्रणामें उनका साथी हो उठा। और भवानीचरण हर साल अपने लड़केको इतनी आसानीसे ऐसे-ऐसे बेशकीमती उपहार देने लगे कि उन्हें देखकर वे खुद ही दंग रह जाते।

दुनियामें बगैर कीमतके कुछ भी नहीं मिल सकता और वह कीमत कितने दुःखसे आती है, माका अपना बेटा होकर ज्यों-ज्यों वह इस बातको समझने लगा त्यों-त्यों मानो वह भीतरसे और भी बड़ा हो उठा। सभी कामोंमें अब वह माके दाहनी तरफ आ खड़ा होता। घर-गृहस्थीका भार सम्हालना है, बोझ बढ़ाना नहीं है, यह बात बिना उपदेशके ही उसकी नस-नसमें समा गई।

उसे अपनी और अपने घरवालोंकी सारी जुम्मेवारी अपने ऊपर लेनेके लिए तैयार होना है। इस बातको ध्यानमें रखकर वह सर्वान्तःकरणसे पढ़नेमें जुट गया। छात्रवृत्तिकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके बाद जब उसे वजीफा मिलने लगा, तब भवानीचरण सोचने लगे कि अब और ज्यादा पढ़नेकी जरूरत नहीं, अब उसे अपनी जमींदारीका काम सम्हालना चाहिए।

कालीचरणने मासे आकर कहा—"कलकत्ता जाकर बगैर पढ़े मेरी पढ़ाई पूरी कैसे होगी; और योग्यता कैसे बढ़ेगी?"

माने कहा—"सो तो ठीक है बेटा। कलकत्ता तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा।"

कालीचरणने कहा—"मेरे लिए अब कुछ खर्च नहीं करना पड़ेगा। इस

वजीफेसे ही काम चल जायगा; और एक-आध लड़का पढ़ाकर कुछ कर लिया का॰ंगा।"

लेकिन, भवानीचरणको राजी करनेमें बहुत परेशानी उठानी पड़ी। 'सम्हालने लायक जमींदारीका कुछ काम ही नहीं' यह कहनेसे भवानीचरणको अत्यन्त दुःख होता, इसलिए रासमणि उस बातको दबा गईं; बोलीं—"कालीचरणको योग्य तो बनाना ही पड़ेगा।" लेकिन पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे आज तक कोई भी कभी घर छोड़कर बाहर नहीं गया, फिर भी तो चौधरियोंके घर सब योग्य ही हुए हैं। परदेशसे वे यमपुरीके समान डरते थे। कालीचरण जैसे बच्चेको कलकत्ता भेजनेकी बात कैसे किसीके दिमागमें आ सकती है, यह उनकी समझमें नहीं आता। अन्तमें गाँवके सर्वप्रधान बुद्धिमान बगलाचरण तकने रासमणिकी रायमें राय दे दी; उसने कहा—"कालीचरण वकील होकर एक दिन खुद ही उस चुराये हुए वसीयतनामेका पता लगायेगा, यह विधिका लेख किसीके मिटाये मिट नहीं सकता। लिहाजा कलकत्ता जानेसे कोई उसे रोक नहीं सकता।"

इस बातसे भवानीचरणको बहुत-कुछ तसल्ली मिली। वे पुराने कागजात निकालकर वसीयतनामेकी चोरीके विषयमें कालीचरणसे बातचीत करने लगे। फिलहाल माताके मन्त्रीका काम वह अच्छी तरह चला रहा था, पर पिताकी मन्त्रणा-सभामें उसे कुछ बल नहीं मिला। क्योंकि अपने परिवारके इस प्राचीन अन्यायके विषयमें उसके मनमें काफी उत्तेजना नहीं थी। फिर भी वह पिताकी बातमें सिर हिलाता गया। सीताके उद्धारके लिए वीरश्रेष्ठ रामचन्द्रने जैसे लंका-यात्रा की थी, कालीचरणकी कलकत्ता-यात्राको भी भवानीचरण वैसी ही एक खूब बड़ी बात समझने लगे। समझने लगे, यह सिर्फ मामूली परीक्षा पास करनेकी ही बात नहीं, घरकी लक्ष्मीको लौटा लानेकी तैयारियाँ हैं।

कलकत्ता जानेके एक दिन पहले रासमणिने कालीचरणके गलेमें एक रक्षा-कवच लटका दिया; और उसके हाथमें पचास रुपयेका एक नोट देकर बोलीं—"इस नोटको अपने पास रखना, आफत-बिपतमें कभी काम पड़े तो इससे काम लेना।" घर-खर्चमेंसे बड़ी होशियारी और अत्यन्त कष्टसे बचाये हुए इस नोटको ही कालीचरणने यथार्थ और पवित्र कवच समझकर ग्रहण किया। उसने

मन-ही-मन संकल्प किया कि इस नोटको वह माका आशीर्वाद समझकर हमेशा उसकी रक्षा करेगा, कभी खर्च न करेगा ।

२

भवानीचरणके मुंहसे अब वसीयतनामेकी चोरीकी बात बहुत कम सुननेमें आती है। अब उनकी बातचीतका एकमात्र विषय है कालीचरण। उसीकी बात करनेके लिए वे अब सारे मुहल्लेमें घूमा करते हैं। उसकी चिट्ठी मिलते ही वे घर-घर उसे पढ़कर सुनाते ; उनकी नाकसे चश्मा उतरना ही नहीं चाहता। किसी दिन और किसी भी पीढ़ीमें खानदानका कोई कलकत्ता नहीं गया, इससे कलकत्ताके गौरवसे उनकी कल्पना बहुत ही उत्तेजित हो उठी। 'हमारा कालीचरण कलकत्ता पढ़ता है, कलकत्ताका कोई भी समाचार उससे छिपा नहीं, यहाँ तक कि हुगलीके पास गंगाके ऊपर दूसरा एक पुल बन रहा है'– ऐसी-ऐसी खास खबरें उनके लिए बिलकुल घरकी-सी बात हो गई है। "सुना भाई साहब, गंगापर एक और बड़ा-भारी पुल बन रहा है, आज ही कालीचरणकी चिट्ठी आई है, उसमें सब खबर लिखी है।"— कहकर वे चश्मा निकालकर उसे खूब अच्छी तरह पोंछ कर आहिस्ते-आहिस्ते पूरी चिट्ठी पढ़कर सुनाते—"देखा भाई साहब, जमाना कितना बदल गया है, आगे क्या-क्या होगा कौन कह सकता है। आखिर गंदे पाँवोंसे कुत्ता-बिल्ली सभी तो गंगापार होंगे, कलिकाल ठहरा, जो न हो वही थोड़ा है।" इस तरह गंगाका माहात्म्य घटना निःसंदेह एक शोचनीय दुर्घटना है, लेकिन फिर भी, कालीचरणने जो कलिकालकी इतनी बड़ी जयवार्ता उन्हें लिख भेजी है और गाँवके मामूलीसे मामूली आदमी भी उनके जरियेसे सब हाल जान सके हैं इस आनन्दसे वे वर्तमान युगके जीवोंकी असीम दुर्गतिकी दुश्चिन्ताको भी आसानीसे भूल गये। जिससे भी उनकी भेंट हुई, उसीसे वे सिर हिलाकर कहने लगे—"मैं कहता हूँ न, गंगाजी अब ज्यादा दिन नहीं ठहरनेकी!" और मन-ही-मन यह आशा भी उनके बनी रही कि गंगाजी जब जाने लगेंगी तो उसकी खबर सबसे पहले कालीचरणकी चिट्ठीसे ही मिलेगी।

इधर कलकत्तामें कालीचरण दूसरेके मकानमें रहकर, सुबह-शाम खाता लिखने

और लड़के पढ़ानेका काम करके किसी कदर अपनी पढ़ाई चलाने लगा। बड़ी कठिनाईसे उसने प्रवेशिका-परीक्षा पास की ; और फिर वजीफा पाने लगा। इस आश्चर्यजनक घटनापर भवानीचरण सारे गाँवको दावत देनेके लिए व्याकुल हो उठे। सोचने लगे, नाव तो करीब-करीब किनारेसे भिड़ने-ही-वाली है, उसके बूतेपर अब मन खोलकर खर्च किया जा सकता है। पर, रासमणिकी तरफसे किसी तरहका उत्साह न मिलनेसे दावत फिलहाल स्थगित रह गई।

कालीचरणको अबकी बार कालेजके पास एक 'मेस'में जगह मिल गई। 'मेस'के अधिकारीने उसे नीचेकी मंजिलमें एक काममें-न-आनेवाली कोठरी दे दी है। कालीचरण उनके घर लड़कोंको पढ़ाता है और उसके एवजमें उनके यहाँ दोनों वक्त खाता और 'मेस'की इस सीड़-शुदा अँधेरी कोठरीमें रहता है। इस कोठरीमें एक खास गुण यह था कि उसमें कालीचरणका कोई साझीदार न था, और इसलिए, यद्यपि हवा वहाँ नहीं घुस पाती थी किन्तु पढ़ाईका काम निर्विघ्न चलता था। कुछ भी हो, जब कि कलीचरणकी ऐसी हालत ही नहीं कि वह हर तरहकी सहूलियतकी माँग कर सके, तो उसका विचार करना ही फजूल है।

उस मेसमें जो किराया देकर रहते हैं, खासकर जो दूसरी मंजिलके उँचे लोकमें रहते हैं, उनके साथ कालीचरणका कोई सम्बन्ध ही नहीं। किन्तु, सम्बन्ध न रहनेसे ही संघातसे बचा जा सकता है ऐसा कोई नियम नहीं। ऊपरका वज्राघात नीचेके लिए कितना घातक होता है, कालीचरण इस बातको जल्दी ही समझ गया।

मेसके उच्चलोकमें इन्द्रका सिंहासन जिसके कब्जेमें है उसका थोड़ा-सा परिचय देना जरूरी है। वह बड़े-आदमीका लड़का है ; कालेजमें पढ़ते समय मेसमें रहना उसके लिए अनावश्यक है, फिर भी मेसमें रहना ही उसे पसन्द है।

उसके बड़े परिवारकी तरफसे स्त्री और पुरुषजातीय कुछ रिश्तेदारोंको बुलाकर कलकत्तामें किरायेपर मकान लेकर रहनेका अनुरोध आया था, पर वह किसी तरह राजी नहीं हुआ। उसने कारण दिखलाया कि घरमें अपने अदमियोंके बीच रहनेसे पढ़ाई-लिखाई बिलकुल नहीं होगी। पर असल कारण यह नहीं है। असलमें, शैलेन्द्रको सोहबत और धूमधाम बहुत पसन्द है ; और घरमें

रहनेसे बड़ी-भारी मुसीबत यह होती है कि उनके सिर्फ संग-साथसे ही पिंड नहीं छूटता बल्कि तरह-तरहकी फरमाइश और जुम्मेदारीका बोझ भी सिरपर आ पड़ता है। 'इसके साथ ऐसा नहीं करना चाहिए' और 'उसके साथ ऐसा न करनेसे बड़ी नमोसोकी बात होगी'– इन सब झंझटोंमें कौन पड़े ? इसीलिए शैलेन्द्रके लिए सबसे अच्छी और स्वाधीन जगह है मेस। वहाँ आदमी काफी हैं, पर उसपर किसी तरहकी जुम्मेवारी नहीं। वे आते हैं, जाते हैं, हँसते हैं, गपशप करते हैं ; नदीके पानीकी तरह सिर्फ बहते ही जाते हैं, कहीं जरा भी छेद नहीं रख जाते।

शैलेन्द्रकी धारणा थी कि वह 'अच्छा आदमी' है, जिसको कि सहृदय कहते हैं। सभी जानते हैं कि इस धारणामें सबसे बड़ा सुभीता यह है कि अपने तईं इसे कायम रखनेके लिए 'अच्छा आदमी' बननेकी कोई जरूरत नहीं होती। अहंकार चीज हाथी-घोड़े जैसी नहीं है ; उसे अत्यन्त कम खर्च और बिना खूराकके खूब मोटा-ताजा बनाये रखा जा सकता है।

और शैलेन्द्रमें खर्च करनेकी ताकत और आदत दोनों ही थीं, इसलिए अपने अहंकारको वह बिलकुल बिना-खर्चके जंगलमें चरने नहीं छोड़ देता, बल्कि कीमती खुराक देकर उसे वह सदा सुन्दर-सुसज्जित बनाये रखता।

असलमें, शैलेन्द्रके मनमें दया काफी थी। और, दूसरोंका दुःख दूर करनेमें तो उसके उत्साहका ठिकाना न था ; इतना ज्यादा उत्साह कि अगर कोई अपना दुःख दूर करानेके लिए उसकी शरण न लेता तो उसे वह बाकायदा दुःख दिये बगैर नहीं मानता। उसकी दया जब निर्दय हो उठती तब वह खतरनाक रूप धारण कर लेती।

'मेस'के लोगोंको थियेटर दिखाना, होटलमें खिलाना-पिलाना, रुपये उधार देकर उस बातको हमेशा याद न रखना वगैरह गुण उसमें काफी मात्रामें मौजूद थे। किसी नव-विवाहित मुग्ध युवकका अगर पूजाकी छुट्टियोंमें घर जाते समय बासा-खर्च वगैरह चुकानेके बाद बिलकुल हाथ खाली हो जाता, तो नई-बहूके मनोहरणके योग्य साबुन एसेन्स वगैरह शौककी चीजें और उसके साथ ही एक-आध नई फैशनके ब्लाउज ले जानेमें उसे जरा भी दिक्कत नहीं उठानी पड़ती।

शैलेन्द्रकी सुरुचिपर भरोसा करके वह कहता, 'तुम्हीं पसन्द करके खरीदवा देना भाई।' और दूकानमें उसे साथ ले जाकर जब वह अपने हाथसे सस्ते दामकी रद्दी चीज पसन्द करता, तब शैलेन उसे फटकारता हुआ कहता—"अरे छि-छि, तुम्हारी कोई पसन्द है यह!" कहता हुआ वह सबसे बढ़िया और खूबसूरत चीज अपने हाथसे छाँटने लगता। दूकानदार हँसके कहता—"हाँ, इन्हें है चीजकी पहचान!" खरीददार दाम सुनकर सन्न रह जाता; और तब शैलेन दाम चुकानेका तुच्छ भार अपने ही ऊपर ले लेता। दूसरे पक्षकी तरफसे बार-बार जबरदस्त आपत्ति उठती, पर व्यर्थ।

इस तरह जहाँ शैलेन था वहाँ वह अपने चारों तरफके सबोंका सभी विषयोंमें आश्रयस्वरूप हो उठा था। लोगोंका हित करनेका शौक उसमें इतना जबरदस्त था कि कोई उसका आश्रय स्वीकार नहीं करता तो उस उद्दण्डताको वह किसी भी तरह बरदाश्त नहीं कर सकता था।

बेचारा कालीचरण नीचेकी अँधेरी कोठरीमें मैली चटाईपर बैठा, फटी गंजी पहने, किताबके पन्नेमें आँखें गड़ाकर झूमता हुआ पाठ याद करता रहता। जैसे भी हो उसे 'स्कॉलरशिप' लेना ही है।

माने कलकत्ता आते समय उसे अपने कंठकी सौगन्द दिलाकर कह दिया था कि बड़े-आदमीके लड़कोंके साथ मिलकर वह आमोद-प्रमोदमें कतई न फँसे। सिर्फ इसलिए नहीं कि माका आदेश है, बल्कि उसे जो गरीबी अंगीकार करनी पड़ी है उसकी रक्षाके लिए उसका बड़े-आदमीके लड़कोंसे दूर रहना जरूरी था। वह किसी दिन शैलेनके पास नहीं फटका; और, हालाँ कि वह जानता था कि शैलेनका मन पा जाय तो उसकी रोजमर्राकी बहुत-सी दुरूह समस्याएँ एक क्षणमें सहज हो जा सकती हैं, मगर फिर भी कठिनसे कठिन संकटमें भी कालीचरणको उसकी मेहरबानी पानेका लोभ कभी नहीं हुआ। अपनी तंग हालतको लिये-हुए अपनी गरीबीके एकान्त अंधेरेमें छिपे रहना उसे कहीं ज्यादा पसन्द था।

लेकिन, शैलेनको उसकी यह अकड़ किसी भी तरह बरदाश्त नहीं हुई। इसके अलावा, खाना-पीना कपड़े-लत्ते और रहन-सहनमें कालीचरणकी गरीबी

इतनी ज्यादा जाहिर थी कि वह आँखोंको अखरने लगती है। सीढ़ीसे ऊपर चढ़ते वक्त उसके कपड़े-लत्ते और मशहरी-बिस्तरपर जब-कभी नजर पड़ती तो वह उसका एक तरहका कसूर-सा बनकर शैलेनकी आँखोंमें चुभता रहता। उसपर उसके गलेमें एक ताबीज लटकता है; और वह दोनों वक्त संध्या-पूजा करता है। उसके इस अद्‌भुत गँवारूपनपर ऊपरवाला गुट्ट खूब जोरोंसे हँसता और मजाक उड़ाता रहता है। शैलेनके गुट्टके दो-एक लड़कोंने इस एकान्त-वासी निरीह लड़केका भीतरी रहस्य जाननेके लिए उसकी कोठरीमें जाना-आना भी शुरू किया; लेकिन मुँहचोर कालीचरणका मुँह खुलवानेमें वे असफल ही रहे। और, उसकी कोठरीमें ज्यादा देर बैठना न तो आरामदेह था और न स्वास्थ्यकर, इसलिए और-भी जल्दी उन्हें पीठ दिखाकर भाग आना पड़ा।

उनकी खाने-पीनेकी पार्टीमें किसी दिन बेचारेको बुलाया जाय तो वह अवश्य ही कृतार्थ हो सकता है, ऐसा समझकर एक दिन उसे निमन्त्रण भी दिया गया; मगर कालीचरणने कह दिया कि पार्टीका खाना-पीना उसे बरदाश्त नहीं होगा, और आदत भी नहीं है। उसकी इस नामंजूरीसे शैलेन अपने दलबल-सहित अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

कुछ दिनों तक उसके ठीक ऊपरवाले कमरेमें ऐसी ऊधमबाजी और गाने-बजानेका ऐसा जोरोंका शोर होता रहा कि कालीचरणका पढ़ने-लिखनेमें मन लगाना असम्भव हो उठा। दिनमें वह यथासम्भव गोलदिग्घीके एक पेड़के नीचे बैठकर पढ़ता और रातको पौ फटनेके बहुत पहले ही उठकर पढ़ना शुरू कर देता।

कलकत्तामें खाने-पीने और रहनेकी जगहकी तकलीफ और अत्यधिक परिश्रमकी वजहसे कालीचरणको सिर-दर्दकी एक बीमारी-सी हो गई। कभी-कभी ऐसा होता कि तीन-चार दिन तक उसे बिस्तरपर पड़ा रहना पड़ता।

इस बातका उसे निश्चय था कि इस खबरके पाते ही उसके पिता उसे कलकत्ता हरगिज नहीं रहने देंगे, और घबराकर वे कलकत्ता भी दौड़े आवें तो ताज्जुब नहीं। भवानीचरण समझते थे कि कलकत्तामें कालीचरण इतना सुखी है कि गाँवके लोग उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उनकी धारणा थी

कि गँवई-गाँवोंमें जैसे पेड़-पौधे घास वगैरह अपने-आप ही पैदा होते रहते हैं उसी तरह कलकत्तामें सब तरहके आरामके उपकरण स्वतः ही पैदा होते रहते हैं और सभी उसे भोग सकते हैं। कालीचरणने पिताकी इस गलतफहमीको ज्योंका त्यों बना रहने दिया।

बहुत ज्यादा तकलीफके दिनोंमें भी अपने पिताको वह बराबर चिट्ठी लिखता रहा; मगर ऐसी तकलीफके वक्त शैलेनका गुट्ट जब ठीक उसके माथेके ऊपर भूतोंका-सा ऊधम और शोरगुल करता रहता तब उसके कष्टकी सीमा न रहती। इस तरह गरीबीका अपमान और दुःख वह जितना ही ज्यादा भोगने लगा उतना ही उसका मन बराबर इस बातपर दृढ़ होता गया कि वह माता-पिताको इस दुःखसे छुटकारा देगा ही देगा।

कालीचरणने अपनेको अत्यन्त संकुचित करके सबकी निगाहसे अलग रखनेकी भरसक कोशिश की, पर उससे ऊधममें जरा भी फरक नहीं आया। एक दिन उसने देखा कि उसके मामूली पुराने जूतोंमेंसे एक जूता गायब है और उसके बदले बहुत ही बढ़िया एक नया जूता पड़ा है। ऐसे दो तरहके जूते पहनकर कालेज जाना असम्भव था; और इस विषयमें किसीसे कुछ शिकायत करना भी फजूल था; इसलिए बेचारेको एक मोचीसे पुराने जूते खरीदकर काम चलाना पड़ा। एक दिन ऊपरसे एक लड़केने आचानक काली चरणकी कोठरीमें आकर पूछा—"आप क्या ऊपरसे भूलकर मेरा सिगरेट-केस ले आये हैं? कहीं मिल नहीं रहा है।"

कालीचरण झुंझला उठा; बोला—"मैं आपलोगोंके कमरेमें नहीं गया।"

"यह रहा, यहीं तो पड़ा है।"—कहता हुआ वह आगे बढ़ा; और कोठरीके एक कोनेमें पड़ा हुआ अपना बेशकीमती सिगरेट-केस उठाकर चुपचाप ऊपर चल दिया।

कालीचरणने मन-ही-मन तय कर लिया कि एफ० ए० परीक्षामें अगर अच्छा वजीफा मिल गया, तो इस मेसको छोड़कर वह और-कहीं जाकर रहेगा।

मेसके सब लड़के मिलकर हर साल धूमधामके साथ सरस्वती-पूजा किया

करते हैं। उसका खर्च मुख्यत: शैलेन ही उठाता है, पर चन्दा सभी लड़के देते हैं। पिछले वर्ष, खास तौरसे अवज्ञा करके, कालीचरणसे कोई चन्दा लेने नहीं आया। इस साल, महज उसे तंग करनेके लिए, लड़कोंने चन्दाका चिट्ठा लाकर उसके सामने रख दिया। जिन लोगोंसे कालीचरणने कभी किसी तरहकी सहायता नहीं ली, और जिनके यहाँ अकसर-होनेवाले आमोद-प्रमोदमें शामिल होनेके सौभाग्यको बराबर वह अस्वीकार करता आया है, वे जब कालीचरणसे चन्दा लेने आये, तो, मालूम नहीं क्या समझके, चटसे उसने पाँच रुपयेका नोट निकालकर दे दिया। पाँच रुपये शैलेनको आज तक अपने गुट्टके किसी भी लड़केसे नहीं मिले थे। कालीचरणकी गरीबी और कंजूसीपर अब तक सभी लड़के उसकी अवज्ञा करते आये थे, किन्तु आज उसका पाँच रुपयेका दान उनके लिए बिलकुल ही असह्य हो उठा। उसकी हालत कैसी है सो किसीसे छिपी नहीं ; फिर इतना बड़प्पन किस बातका ? मालूम होता है इस तरह वह सबपर अपनी धाक जमाना चाहता है।

सरस्वती-पूजा धूमधामके साथ हो गई। कालीचरण उसमें पाँच रुपये नहीं भी देता, तो भी उसमें कोई फर्क नहीं आता। मगर कालीचरणके पक्षमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक तो वह दूसरेके घर खाता है, सो भी रोज ठीक वक्तपर नहीं मिलता ; दूसरे, रसोइया-महाराज और नौकर-चाकर ही उसके भाग्यविधाता हैं ; इसलिए उसको भलाई-बुराई और कमी-बेशीके बारेमें किसी तरहकी अप्रिय समालोचना न करके उसे नाश्ता-पानीके लिए कुछ पैसे अपने पास रखने ही पड़ते हैं। उसकी वह पूँजी भी आज फूल और नैवेद्यके साथ सरस्वती देवीके चरणोंमें चढ़ गई।

कालीचरणकी सिर-दर्दकी बीमारी बहुत ज्यादा बढ़ गई। अबकी बार परीक्षामें वह फेल तो नहीं हुआ, पर वजीफासे वंचित रह गया। लिहाजा, अपने पढ़नेका समय घटाकर उसे एक-और टियुशन करनेको मजबूर होना पड़ा। और, बेहद उपद्रवोंके बावजूद बिना कियायेकी उस कोठरीको वह न छोड़ सका।

ऊपरकी मंजिलमें रहनेवालोंको उम्मीद थी कि अबकी बार छुट्टीके बाद

कालीचरण इस मेसमें नहीं रहेगा। मगर यथासमय उसकी उस नीचेकी कोठरीका ताला खुल गया। मामूली धोती और वही पुराना चायना-कोट पहने कालीचरणने अपने घोंसलेमें प्रवेश किया ; और कुलीके सिरसे मैले कपड़ेमें बँधी हुई पोटली-शुदा टीनका बकस उतारकर, थोड़ी बहस करनेके बाद, उसे मजूरीके पैसे दे दिये। उस पोटलीमें तरह-तरहकी हाँड़ियों और सकोरोंमें उसकी माने कच्चे आम और बेर आदि उपकरणोंसे बने हुए नानाप्रकारकी स्वादिष्ट चीजें बनाकर रख दी हैं। कालीचरणको मालूम था कि उसकी गैरहाजिरीमें ऊपरके कुतूहलप्रिय लड़के उसकी कोठरीमें आया करते हैं। उसे और-किसी बातकी परवाह नहीं थी ; किन्तु मा-बापका दिया हुआ कोई स्नेहका निदर्शन उन लोगोंके हाथ पड़े, यह वह नहीं चाहता था। उसकी माने जो खानेकी चीजें उसके साथ रख दी थीं, उसके लिए वे अमृत हैं। पर उनका महत्त्व गाँवके गरीब ही समझ सकते हैं, शहरके चालबाज स्टूडेण्ट उसकी कदर क्या जानें! और वे चीजें जिन पात्रोंमें रखी गई थीं उनमें भी शहरके ऐश्वर्यका कोई लक्षण नहीं है, इसलिए यह निश्चित है कि शहरके ये लड़के उसकी अवज्ञा जरूर करेंगे, जोकि उसके लिए बिलकुल ही असह्य और पीड़ादयक होगा। पहली बार उसने ऐसी चीजें तख्तके नीचे पुराने अखबारोंसे ढकके छिपा रखी थीं ; लेकिन अबकी बार उसने उन्हें तालेमें बन्द रखना ही ठीक समझा। अब वह पाँच मिनटके लिए भी घरसे बाहर निकलता है तो ताला बन्द कर जाता है।

उसकी यह बात सबको खटकने लगी। शैलेनने कहा—"धन-दौलत तो फटी पड़ती है! घरकी हालत देखकर तो चोरकी आँखोंमें भी आँसू आ जायेंगे, सो उसमें घड़ी-घड़ी ताला! एकदम बैङ्क-आफ-बेङ्गॉल ही बना दिया मेरे यारने! किसीपर विश्वास ही नहीं रहा,—शायद हजरतके चायना-कोटपर किसीका जी ललचा जाय! भई राधे, कमसे कम एक नया कोट तो इसे दिलवा ही देना चाहिए। हमेशासे वही एक कोट, देखते-देखते हम तो परेशान हो गये।"

शैलेन खुद कभी कालीचरणको अँधेरी कोठरीमें नहीं घुसा। सीढ़ीसे ऊपर जाते वक्त उधर नजर पड़ते ही उसका जी मिचलाने लगता है। खासकर रातके वक्त, जब कि वह बिना-हवाकी बंद कोठरीमें दीआके सामने उघड़े-बदन

बैठा हुआ कालेजकी पढ़ाई करता, तो उसे देखकर शैलेनको फुरफुरी आने लगती। एक दिन शैलेनने अपने साथियोंसे कहा—"अरे कोई खोज तो लगाओ भई, अबकी बार कहाँका खजाना ले आया है, जो घड़ी-भर भी बगैर तालेके चैन नहीं पड़ता !"— इस कौतुकपर सभीने उत्साह प्रकट किया।

कालीचरणका ताला बहुत ही कम-दामका था ; उसको मनाहीमें कुछ जोर नहीं, लगभग सभी चाभियोंसे खुल जाता है। एक दिन शामके बाद कालीचरण जब टियुशनके लिए गया, तो उस मौकेसे दो-तीन कुतूहलप्रिय लड़के लालटेन लिये-हुए उसकी कोठरीमें घुस गये। तख्तके नीचेसे उनलोगोंने अचार अमावट पगे-हुए सकरपारे वगैरह खोज निकाले। पर ये चीजें उन लोगोंको बहुमूल्य या गोपनीय नहीं मालूम हुईं।

ढूँढ़ते ढूँढ़ते तकियाके नीचेसे रिंग-समेत एक चाभी हाथ पड़ी। उस चाभीसे टीनका बकस खोल डाला। उसमें कुछ मैले कपड़े, किताबें, कापी, कैंची, चाकू कलम वगैरह मामूली सामान पाया गया। बकस बन्द करके वे चलनेकी सोच ही रहे थे कि इतनेमें ट्रंकके बिलकुल नीचे रूमालमें बँधी हुई कोई चीज उनके हाथ पड़ गई। खोलकर देखा तो उसमें एक पुड़िया मिली। पुड़िया खोलनेपर, एकके बाद एक कई कागज खोलनेके बाद, उसमें एक पचास रुपयेका नोट निकला।

उस नोटको देखकर फिर किसीसे हँसी रोके न रुकी ; सबके सब ठहाका मारकर हँस पड़े। अब उनको समझमें आया कि इसी नोटके खातिर ही वह बार-बार ताला बन्द किया करता है, उससे किसीपर विश्वास करते नहीं बनता। इस लड़केको कंजूसी और सन्दिग्ध प्रकृतिपर शैलेनके सहचारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

इतनेमें सहसा रास्तेमें कालीचरणकी-सी खाँसी सुनाई दी। उसी वक्त बकस बन्द करके नोट लेकर सब ऊपर भाग गये। पीछेसे एकने जल्दीसे दरवाजा बन्द करके ताला लगा दिया।

शैलेन उस नोटको देखकर जोरोंसे हँस पड़ा। पचास रुपये शैलेनकी नजरोंमें कुछ न थे ; फिर भी, कालीचरणके पास इतने रुपये हैं इस बातका

कोई अनुमान ही नहीं कर सकता था। पचास रुपयेके लिए जो इतना सतर्क रहता है, चोरी हो जानेपर वह क्या करता है, यह देखनेके लिए सब उत्सुक हो उठे।

लड़के पढ़ाकर रातके नौ बजे जब कालीचरण हारा-थका घर लौटा तब उसमें इतना सामर्थ्य ही न था कि किसी तरफ गौर करता। खासकर माथेमें इतना जोरका दर्द था कि उसीके मारे वह परेशान था; और समझ रहा था कि यह दर्द अब कुछ दिनों तक चलेगा।

दूसरे दिन उसने कपड़े निकालनेके लिए जो तख्तके नीचेसे बकस निकालकर देखा तो बकस खुला था! हालाँ कि वह इतना असावधान नहीं, फिर भी उसने समझा कि वह ताला बन्द करना भूल गया होगा। कारण, घरमें अगर चोर आता तो दरवाजेका ताला बंद नहीं रहता।

बकस खोलकर देखा तो सब सामान उलटा-पुलटा मिला। उसका दिल दहल गया। झटपट सब चीजें निकालकर रूमाल देखा तो उसमेंसे माका दिया-हुआ वह नोट गायब है! कालीचरणने बार-बार सब कपड़े झड़काये और चारों तरफ टटोल-टटोलकर देखा, पर नोट नहीं निकला। उधर ऊपरकी मंजिलका यह हाल कि क्षण-क्षणमें लोग सीढ़ीसे उतरते और चढ़ते हुए कोठरीकी तरफ देख जाते; और कालीचरणकी दुरवस्थाका धारावाहिक रोचक वर्णन सुना-सुनाकर सपरिषद शैलेनकी तबीयत खुश कर देते। ऊपर अट्टहास्यका फव्वारा-सा छूट निकला।

नोट मिलनेकी जब कोई उम्मीद ही नहीं रही और सिर-दर्दकी तकलीफसे जब चीज-वस्त उठाना-धरना उसके लिए असम्भव हो गया, तब वह बिस्तरपर जाकर मुरदा-सा औंधा पड़ रहा। उसकी माने कितनी तकलीफें उठाकर, जीवनके एक-एक क्षणको कठिन यन्त्रमें पीस-पीसकर कैसे-कैसे ये रुपये इकट्ठे किये थे, सो भगवान ही जानते हैं। किसी दिन, उसे भी अपनी माका दुःखका इतिहास नहीं मालूम था, तब वह माके भारपर भार ही बढ़ाता रहा है; अन्तमें जिस दिन माने उसे अपने रोजमार्राके दुःखके आवर्तनमें अपना साथी बना लिया उस दिन सरीखा गौरव उसने कभी भी अनुभव नहीं किया। कालीचरणने अपने

जीवनमें जो सबसे बड़ा सन्देश, सबसे महान आशीर्वाद पाया था, वह इस नोटमें ही पूर्ण हुआ था। उसे अपनी माके अथाह स्नेह-समुद्रके मन्थनसे जो अमूल्य दुःखका उपहार मिला था वह आज चोरी चला गया; और इसे वह अपने तईं एक पैशाचिक अभिशापके समान समझने लगा। कोठरीके पास सीढ़ीपर ऊपरवालोंके उतरने-चढ़नेकी आवाज सुनाई देने लगी। उन लोगोंका बेमतलब उतरना-चढ़ना बन्द नहीं होना चाहता। गाँवमें आग लगी है, सब-कुछ जलकर राख हुआ जा रहा है, और बगलसे सकौतुक कलध्वनिके साथ नदी बही चली जा रही है, यह भी लगभग वैसा ही था।

ऊपरकी मंजिलमें जोरोंकी हँसी सुनकर कालीचरणको ऐसा लगा कि यह चोरका काम नहीं; दूसरे ही क्षण वह समझ गया कि शैलेनके गुट्टवाले मजे लेनेके लिए उसका नोट उड़ा ले गये हैं। चोर चुरा ले जाता तो शायद उसे इतना दुःख नहीं होता। उसे ऐसा लगने लगा कि धनके गर्वसे गर्वित इन युवकोंने उसकी माकी देहपर हाथ उठाया है। इतने दिनोंसे वह इस मेसमें रह रहा है; पर एक भी दिन इस सीढ़ीसे चढ़कर वह ऊपर नहीं गया। किन्तु आज, उसके बदनपर फटी गंजी है, पैरोंमें जूते नहीं, मनके आवेग और सिर-दर्दकी उत्तेजनासे चेहरा उसका सुर्ख हो उठा है, और उसी हालतमें वह तेजीसे सीढ़ी तय करता हुआ ऊपर जा पहुँचा।

रविवारका दिन था; कालेज जानेकी किसीको फिकर नहीं थी। कमरेके बाहर लकड़ीसे पटे बरंडेमें कोई कुरसीपर तो कोई मोढ़ेपर बैठे हुए गप-शप हँसी मजाक कर रहे थे। कालीचरण हाँफता हुआ उनके बीच जाकर क्रोधसे भराए हुए गलेसे बोल उठा—"दीजिये, मेरा नोट दीजिये।"

अगर वह प्रार्थनाके स्वरमें कहता, तो उसका अच्छा ही नतीजा होता, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उसकी उन्मत्तवत् क्रुद्ध मूर्ति देखकर शैलेन यकायक बहुत ज्यादा तैशमें आ गया। अगर उसके घरका दरबान वहाँ होता तो उसके जरिये इस असभ्यको वह कान पकड़कर मकानसे बाहर निकलवा देता, इसमें सन्देह नहीं। शैलनका रुख देखकर सबके सब एकसाथ उठ खड़े हुए और गरजकर बोले—"क्या कहा आपने! कैसा नोट!"

कालीचरणने कहा—"मेरे बसकसे आपलोग नोट ले आये हैं।"

"छोटे मुँह बड़ी बात! हमलोगोंको चोर बना रहे हो!"

कालीचरणके हाथमें अगर कुछ होता तो उसी क्षण वह खूनखराबी कर बैठता। उसका रंगढंग देखकर चार-पाँच जनोंने मिलकर उसके हाथ पकड़ लिये। वह जालमें फँसे हुए शेरकी तरह घुमड़ने लगा।

इस अन्यायका प्रतीकार करनेकी उसमें कोई शक्ति नहीं, कोई प्रमाण नहीं; सभी उसके सन्देहको उन्मत्तता बताकर उड़ा देंगे। जिन लोगोंने उसे मृत्युवाण मारा है वे उसकी इस उद्दण्डताको असह्य मानकर बड़ी-भारी उछल-कूद मचाने लगे।

उस दिन, कालीचरणकी रात कैसे बीती, किसीको कुछ भी पता नहीं लगा। शैलेनने एक सौ रुपयेका एक नोट निकालकर कहा—"जाओ दे आओ गँवारको जाकर।"

सहचरोंने कहा—"वाह जी वाह! तुम भी खूब हो! पहले तेज तो मरने दो। फिर हम सबोंसे लिखित माँफी माँगे, तब विचारकर देखा जायगा।"

यथासमय सब सोने चले गये; और सोनेमें किसीको देर भी न लगी।

सवेरे कालीपदकी बात लोग प्रायः भूल ही गये थे। सीढ़ीसे नीचे उतरते समय किसीने उसकी कोठरीमें किसीको बोलते हुए सुना। सोचा, शायद वकील बुलाकर उससे सलाह कर रहा होगा। दरवाजेमें भीतरसे हुड़का लगा था। बाहरसे कान लगाकर जो-कुछ सुनाई दिया उससे कानूनका कोई ताल्लुक ही न था, साराका सारा असम्बद्ध प्रलाप है।

ऊपर जाकर उसने शैलेनको खबर दी। शैलेन उतर आया और दरवाजेके सामने आकर खड़ा हो गया। कालीचरण क्या-क्या बकता चला जा रहा है, कुछ समझमें नहीं आता; क्षण-क्षणमें सिर्फ 'बापू'-'बापू' कहकर चिल्लाने लगता है।

शैलेन डर गया कि शायद नोटके शोकमें वह पागल हो गया है। बाहरसे दो-तीन बार पुकारा गया—"कालीचरण बाबू!" पर किसीने कुछ जवाब नहीं

दिया। फिर बड़बड़ानेकी-सी आवाज सुनाई देने लगी। शैलेनने फिर एक बार जोरसे पुकारकर कहा—"कालीचरण बाबू, दरवाजा खोलिये। आपका वह नोट मिल गया।"

किन्तु दरवाजा नहीं खुला ; सिर्फ बड़बड़ाना सुनाई देने लगा।

मामला यहाँ तक पहुँचेगा इसकी शैलेनने कल्पना भी नहीं की थी। वह मुँहसे अपने अनुचरोंके आगे कुछ कह न सका, किन्तु भीतर-ही-भीतर उसके मनमें पश्चातापका काँटा बुरी तरह चुभने लगा। बोला—"दरवाजा तोड़ डालो।" किसी-किसीने सलाह दी कि 'पुलिस बुलाकर तोड़ना ठीक होगा। सचमुच पागल हो गया हो तो न-जाने क्याका क्या कर बैठे! कलका हाल नहीं देखा था!'

शैलेनने कहा—"नहीं नहीं, जल्दीसे कोई जाकर अपने डाक्टरको बुला लाओ।"

डाक्टर पास ही रहते थे। थोड़ी देरमें आ पहुँचे ; और दरवाजेसे कान लगाकर बोले—"यह तो बायमें बक रहा है।" दरवाजा तोड़कर लोग भीतर घुसे, देखा कि तख्तपर बिछा हुआ बिस्तर तितर-बितर होकर आधा जमीनसे जा लगा है। कालीचरण जमीनपर बेहोश पड़ा है। क्षण-क्षणमें हाथ-पैर पटक रहा है और ऊटपटांग बक रहा है ; आँखें खुली और लाल-सुर्ख हो रही हैं ; और मुँह ऐसा लग रहा है जैसे अभी तुरत फटकर लहू निकल पड़ेगा।

डाक्टरने उसके पास बैठकर बहुत देर तक परीक्षा की ; और अन्तमें शैलेनसे पूछा—"इसका कोई घरका आदमी है यहाँ ?"

शैलेनका चेहरा फक पड़ गया। उसने डरते हुए पूछा—"क्यों, किसलिए ?"

डाक्टरने गम्भीर होकर कहा—"खबर पहुँचा देना ठीक है, हालत अच्छी नहीं है।"

शैलेनने कहा—"इनसे हमारी कोई खास जान-पहचान नहीं। घरके लोग कहाँ रहते हैं, कुछ भी नहीं मालूम। तलाश करूँगा। लेकिन अभी तुरत क्या करना चाहिए ?"

डाक्टरने कहा—"इस कोठरीसे हटाकर तुरत किसी खुले हुए कमरेमें ले चलना चाहिए। और दिन-रातके लिए नर्सका भी इन्तजाम होना चाहिए।"

शैलेन रोगीको अपने कमरेमें ले आया। और, सब साथियोंको उसने यह कहकर विदा कर दिया कि भीड़ करना ठीक नहीं। कालीचरणके माथेपर बरफकी पोटली रखकर अपने हाथसे बयार करने लगा।

पहले ही कहा जा चुका है कि ऊपरके लड़के किसी तरहका उपहास या मजाक न उड़ावें इस डरसे कालीचरणने अपने पिता-माताका सम्पूर्ण परिचय इन लोगोंसे छिपा रखा था। अपनी चिट्ठियाँ वह खुद डाकखाने जाकर डाल आता था; और उसकी चिट्ठियाँ सब डाकखानेके पतेपर ही आती थीं। इसके लिए रोज वह डाकखाने जाया करता था।

कालीचरणके घरवालोंका पता लगानेके लिए और-एक बार उसका बकस खोलना पड़ा। उसके बकसमें चिट्ठियोंके दो बंडल मिले। दनों बंडल बहुत ही जतनसे फीतेसे बँधे हुए थे। एक बंडलमें माकी चिट्ठियाँ थीं और दूसरेमें पिताकी। पिताकी चिट्ठियाँ ही ज्यादा थीं, माकी बहुत कम।

चिट्ठियाँ हाथमें लेकर शैलेनने दरवाजा बन्द कर दिया; और रोगीके बिस्तरके पास बैठकर पढ़ने लगा। चिट्ठियोंमें उसके घरका पता पढ़ते ही यकायक वह चौंक पड़ा। शानवाड़ो, चौधरियोंकी हवेली, भवानीचरण चौधरी!

चिट्ठियाँ रखकर वह कुछ देर तक सन्न होकर कालीचरणके मुँहकी ओर देखता रहा। कुछ दिन पहले उसके सहचरोंमेंसे किसीने कहा था, उसके चेहरेसे कालीचरणका चेहरा कुछ मिलता है। वह बात सुननेमें उसे अच्छी नहीं लगी थी; और, और-सब साथियोंने उसकी बातको फूंकमें उड़ा दिया था। लेकिन आज उसकी समझमें आया कि वह बात बेबुनियाद नहीं थी। उसके बाबा दो भाई थे, श्यामाचरण और भवानीचरण, यह बात उसे मालूम थी। उसके बादके इतिहासकी उनके घर कभी चर्चा नहीं हुई। भवानीचरणके कोई लड़का है और उसका नाम कालीचरण है, यह उसे नहीं मालूम था। तो यही कालीचरण हैं, उसके काका!

शैलेनको तब याद आने लगा, उसकी दादी, जब तक जिन्दा थीं, बड़े

स्नेहके साथ भवानीचरणका जिक्र किया करती थीं। भवानीचरणका नाम लेनेमें उनकी आँखें भर आती थीं। भवानीचरण उनके देवर जरूर थे; पर उनके लड़केसे भी उमरमें छोटे थे; और उन्होंने उनको अपने बच्चेकी तरह ही पाल-पोसकर बड़ा किया था। जमीन-जायदादको लेकर जब सब-कुछ उलटपुलट हो गया और चाचा-भतीजे न्यारे-न्यारे हो गये, तबसे भवानीचरणकी जरा-सी खबर पानेके लिए उनका हृदय प्यासा बना रहता था। वे बार-बार अपने लड़कोंसे कहती रहती थीं कि 'भवानीचरण बिलकुल भोलाभाला सीधा आदमी है, इसलिए जरूर तुम लोगोंने उसे ठगा होगा;··मेरे ससुर तो उसे इतना ज्यादा प्यार करते थे कि जिसकी हद नहीं; भवानीचरणको वे इस तरह वंचित कर गये होंगे, इस बातपर मैं तो हरगिज विश्वास नहीं कर सकती।' उनके लड़के इन सब बातोंपर बहुत नाखुश होते। और शैलेनको याद आने लगा कि वह भी अपनी दादीसे बहुत नाराज हो जाया करता था। यहाँ तक कि दादी उसकी भवानीचरणकी पक्ष लिया करती थीं इसलिए भवानीचरणपर भी उसे बड़ा गुस्सा आया करता। और अब भवानीचरणकी ऐसी शोचनीय हालत है, ऐसी गरीबीमें दिन काट रहे हैं, यह भी उसे नहीं मालूम था। कालीचरणकी हालत देखकर सभी बातें उसकी समझमें आ गईं; और, अब तक हजारों प्रलोभनोंके होते हुए भी जो कालीचरण उसके अनुचरोंका श्रणीमें भरती नहीं हुआ, इसपर वह अत्यन्त गौरव अनुभव करने लगा। संयोग-वश कालीचरण अगर कहीं उनमें शामिल हो जाता, तो उसकी लज्जाकी सीमा नहीं रहती।

## ९

शैलेनके दलके लोग अब तक बराबर कालीचरणको सताते और अपमानित करते रहे हैं। इसलिए शैलेन अब उस मकानमें अपने काकाको न रख सका। डक्टरकी सलाह लेकर वह अत्यन्त सावधानीके साथ कालीचरणको एक अच्छे मकानमें ले गया।

भवानीचरण शैलेनकी चिट्ठी पाते ही एक साथीकी सहायतासे तुरत कलकत्ता भागे आये। आते समय रासमणिने व्याकुल होकर अपने संचयका अधिकांश पतिके हाथमें देते हुए कहा—"देखना, किसी बातकी कमी न होने पावे ! ज्यादा गड़बड़ मालूम हो तो खबर देना, मैं भी आ जाऊंगी।" चौधरी-खानदानकी बहूके लिए इस तरह कलकत्ता जानेकी बात इतनी असंगत थी कि पहली ही खबरपर उनका जाना हो ही नहीं सकता था। उन्होंने रक्षाकालीके हाथ जोड़कर मन्नत मानी; और ग्रहाचार्यको बुलाकर शान्ति-विधान कराना शुरू कर दिया।

भवानीचरण कालीचरणकी हालत देखकर सन्न रह गये। कालीचरणको तब तक पूरा होश नहीं आया था। उसने उन्हें 'मास्टर साहब' कहके पुकारा, इससे उनकी छाती फटने लगी। कालीचरण बीच-बीचमें 'बापू' 'बापू' भी पुकार उठता था, और तब वे उसका हाथ थामकर उसके मुंहके पास मुंह ले जाकर जोर-जोरसे कहते—"मैं हूं न, बेटा, तेरे पास बैठा हूं न!" – पर उसमें बापको पहचाननेके कोई लक्षण नहीं दिखाई दिये।

डाक्टरने आकर कहा—"बुखार तो पहलेसे कुछ कम है; शायद अब कुछ सेहत मिलेगी।" भवानीचरण इस बातकी चिन्ता भी न कर सकते थे कि कालीचरणको सेहत न मिलेगी। खासकर उसके पैदा होनेसे अब तक बराबर सब यही समझते आये हैं कि वह बड़ा होकर अपने वंशका पुनरुद्धार करेगा, यह बात भवानीचरणके मनमें गहराई तक पैठ गई थी; और उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया था कि कालीचरणकी हस्तीको कोई मिटा नहीं सकता।

इसलिए, डाक्टर जितना अच्छा बताता उससे वे बहुत ज्यादा अच्छा सुन बैठते; और रासमणिको जो चिट्ठी लिखते उसमें अशंकाकी कोई बात ही नहीं रहती।

शैलेन्द्रके व्यवहारसे भवानीचरणको बड़ा-भारी आश्चर्य होता। कौन कह सकता है कि वह उनका अत्यन्त अपना नहीं है? खासकर कलकत्ताका सभ्य सुशिक्षित लड़का होकर भी वह उनकी इतनी ज्यादा श्रद्धा-भक्ति करता है जिसकी

हद नहीं ! उन्होंने सोचा कि कलकत्ताके लड़कोंका शायद ऐसा ही स्वभाव होता होगा। मन-ही मन कहने लगे, 'भला इनमें ऐसा शऊर न होगा तो किनमें होगा ! गाँवके लड़कोंमें न शिक्षा है, न सभ्यता ; इनका मुकाबिला वे क्या कर सकते हैं।'

कालीचरणका बुखार कुछ-कुछ घटने लगा ; और क्रमशः होश भी आने लगा। पिताको खाटके पास देखकर वह चौंक पड़ा। सोचने लगा, कलकत्तामें वह कैसे गुजर करता है यह बात अब उनसे छिपी न रहेगी। इससे भी बढ़कर उसे इस बातकी चिन्ता होने लगी कि उसके ग्रामीण पिता कलकत्ताके इन लड़कोंके लिए उपहासके पात्र हो जायेंगे। चारों तरफ देखकर वह समझ न सका कि यह कौनसा कमरा है ! सब-कुछ उसे सपना-सा मालूम होने लगा।

उस समय उसमें ज्यादा चिन्ता करनेकी शक्ति नहीं थी। उसे ऐसा लगा कि बीमारीका समाचार पाकर उसके पिता कलकत्ता दौड़े आये हैं ; और उस गंदी जगहसे उसे यहाँ ले आये हैं। कैसे लाये, कहाँसे रुपये जुटाये और बादमें कर्ज चुकाते वक्त कैसे संकटका सामना करना पड़ेगा -- ये सब बातें तब वह सोच ही नहीं सकता था। वह तो सिर्फ एक ही बात सोच रहा था कि हर हालतमें उसे जिन्दा बना रहना है ; और इसके लिए सारे संसारपर उसका दावा है।

भवानीचरण तब कमरेमें नहीं थे। शैलेन एक रकाबीमें थोड़ेसे फल लिये हुए कालीचरणके सामने उपस्थित हुआ। कालीचरण दंग होकर उसके मुंहकी ओर देखता रह गया। सोचने लगा, शायद इसमें कुछ परिहास छिपा हुआ है। पहली बात जो उसके ध्यानमें आई वह यह कि पिताको इसके हाथसे कैसे बचाया जाय।

शैलेनने रकाबी टेबिलपर रखकर कालीचरणको प्रणाम किया ; और कहा—"मुझसे बड़ा-भारी कसूर हुआ है, मुझे माफ कर दीजिये।"

कालीचरण और-भी घबरा उठा। पर उसका चेहरा देखकर वह समझ गया कि इसमें कपट नहीं हो सकता। पहले-पहल मेसमें जब उसने शैलेनके यौवनोद्दीप्त उज्ज्वल चेहरेको देखा था तब उसका मन कई बार उसकी तरफ

आकृष्ट हुआ था, किन्तु वह अपनी गरीबीकी शर्मके मारे उसके पास नहीं गया। अगर उसकी हैसियत उसके मुकाबिलेकी होती, अगर मित्रकी हैसियतसे वह उससे मिल-जुल सकता, तो उसे खुशी ही होती। लेकिन, परस्पर इतने नजदीक रहनेपर भी बीचमें जो एक दीवार थी उसे लाँघनेका कोई उपाय ही न था। शैलेन जब सीढ़ीसे उतरता या चढ़ता था, तब उसके महीन दुपट्टेसे ऐसी जोरकी खुशबू उड़ती कि कालीचरणकी अँधेरी कोठरी महक उठती ; और तब पढ़ना छोड़कर एक बार इस हास्यप्रसन्न चिन्ताहीन तरुण चेहरेकी तरफ देखे बगैर उससे रहा नहीं जाता था। उसके बाद, उसी शैलेनकी निर्दय जवानी उसके लिए कैसी घातक साबित हुई, सो मालूम ही है। आज शैलेन जब फलोंकी तश्तरी लिये उसकी खाटके पास आ खड़ा हुआ तब एक गहरी साँस लेकर फिर उसने एक बार उसके सुन्दर चेहरेकी तरफ देखा। क्षमाकी बात उसके मुंहसे नहीं निकली ; वह धीरे-धीरे फल उठाकर खाने लगा ; और इस तरह उसे जो-कुछ कहना था, कह दिया।

कालीचरण प्रतिदिन आश्चर्यके साथ देखता रहा कि उसके ग्रामीण पिताके साथ शैलेनका खूब मेल हो गया है। शैलेन उनसे 'बाबा' कहता है ; और दोनोंमें हँसी-मजाक भी खूब हुआ करता है। इतने दिनों बाद, इस हास्य-परिहासकी दक्षिण-वायुके हिल्लोलसे भवानीचरणके मनमें यौवनकी स्मृतियाँ जाग उठीं। दादीके अपने-हाथकी बनी हुई अमावट अचार वगैरह शैलेनने कैसे चुराकर खाया था, सारा किस्सा आज उसने निर्लज्ज होकर ही कह सुनाया। शैलेनकी इस स्वीकृतिसे कालीचरणको बड़ा गहरा आनन्द हुआ। अपनी माके हाथकी चीजें वह सारे संसारको बुलाकर खिला सकता है अगर वह उसकी कदर समझे। कालीचरणके लिए आज अपनी रोगशय्या आनन्द-सभा हो उठी ; ऐसी सुखकी घड़ियाँ उसके जीवनमें शायद ही कभी आई हों। क्षण-क्षणमें उसे सिर्फ इसी बातका खयाल आने लगा कि इस समय अगर उसकी मा मौजूद होती! उसकी मा होती तो इस कुतूहलप्रिय सुन्दर युवकको वह कितना प्यार करती!

रोगीके इस कमरेमें सिर्फ एक बातकी चर्चा कभी-कभी आनन्द-प्रवाहमें बाधा पहुँचाती रहती। कालीचरणके मनमें मानो गरीबीका एक अभिमान-सा था। किसी जमानेमें उनका घराना काफी ऐश्वर्यशाली था इस बातका गर्व करनेमें वह अत्यन्त लज्जा अनुभव करता है। 'हम गरीब हैं' इस बातको किसी 'किन्तु'से ढकनेको वह किसी भी तरह राजी नहीं। भवानी चरण भी अपने ऐश्वर्यके दिनोंकी चार्चा इसलिए नहीं करते कि उससे उनका गौरव बढ़ेगा; बल्कि इसलिए करते हैं कि वे दिन उनके सुखके दिन थे, यौवनके दिन थे। किन्तु उसमें घूम-फिरकर बार-बार उस वसीयतनामेका जिक्र आ जाता; और तब वे उस जघन्य विश्वासघातके खिलाफ उत्तेजित हो उठते। इससे कालीचरण मन-ही-मन अत्यन्त चंचल हो उठता। वह जानता था कि उसके पिताका यह महज एक पागलपन है। हालाँ कि घरमें उसने और उसकी माने उनके इस पागलपनको खुशी-खुशी बरदाश्त किया है, किन्तु शैलेनके आगे उसके पिताकी यह कमजोरी जाहिर हो, यह उसे अच्छा नहीं लगता। कितनी ही बार पिताको उसने समझाया है कि यह उनका झूठा सन्देह है। पर उसका नतीजा उलटा ही होता। वे और भी जोरसे अपनी बातकी पुष्टि करने लगते। और तब कालीचरणके लिए उन्हें रोकना मुश्किल हो जाता।

खास तौरसे कालीचरण इसलिए और-भी परेशान था कि यह चर्चा शैलेनको बिलकुल अच्छी नहीं लगती। यहाँ तक कि वह भी उत्तेजित होकर विशेष तत्परताके साथ भवानीचरणकी युक्तियोंका खण्डन करने लगता। और सब विषयोंमें भवानीचरण और-सबोंकी राय माननेको तैयार रहते, किन्तु इस विषयमें वे किसीके आगे हार माननेको तैयार नहीं। उनकी मा पढ़ी-लिखी थीं, उन्होंने अपने हाथसे वसीयतनामा और दस्तावेज वगैरह लोहेके सन्दूकमें रखे थे; फिर भी जब सन्दूक खोला गया तो वसीयतनामा गायब! यह चोरी नहीं तो और क्या है? कालीचरण उन्हें ठंडा करनेके लिए कहता, 'बाहर तो कहीं नहीं गया, जो तुम्हारी जायदाद भोग रहे हैं वे भी तो आखिर तुम्हारे ही बच्चे हैं, तुम्हारे ही भतीजे हैं। सारी सम्पत्ति है तो घर-ही-घरमें।

1710



यह भी तो खुशीकी बात है।' किन्तु शैलेनसे ये सब बातें सही नहीं जातीं ; वह उठके बाहर चला जाता। कालीचरण मन-ही-मन दुःखित होता और सोचता, शैलेन शायद उसके पिताको अर्थलोलुप समझता होगा। शैलेनको वह किसी भी तरह यह बात समझा सकता कि उसके पिता बिलकुल सीधे-सादे हैं, सम्पत्तिपर उन्हें जरा भी लोभ नहीं, तो शायद उसके मनका भार उतर जाता।

इतने दिनोंमें कालीचरण और भवानीचरणको शैलेन अपना परिचय जरूर दे देता ; किन्तु इस वसीयतनामेकी चोरीकी चर्चाने उसे रोक दिया। उसके बाप-दादोंने वसीयतनामा चुराया है इस बातको वह किसी भी हालतमें विश्वास करनेको तैयार नहीं ; किन्तु साथ ही इस बातपर भी उससे अविश्वास करते नहीं बनता कि भवानीचरणको पैत्रिक सम्पत्तिके हकसे वंचित रखनेमें जरूर किसीका निर्दय हाथ है। बादमें उसने इस बातचीतमें बहस करना छोड़ दिया।

अब भी शामको कालीचरणकी तबीयत कुछ भारी हो आती है ; सिरमें दर्द होने लगता है और हरारत भी रहती है। पर इसे वह बीमारीमें हो नहीं गिनता। पढ़ाईके लिए उसका मन उद्विग्न हो उठा। एक बार उसके हाथसे स्कॉलरशिप निकल गई है, अब तो वैसा नहीं होने दिया जा सकता। शैलेनसे छिपाकर फिर उसने पढ़ना शुरू कर दिया। इस विषयमें डाक्टरकी सख्त मनाई थी, उसकी उसने परवाह नहीं की।

पितासे बोला—"बापूजी, तुम घर चले जाओ, वहाँ मा अकेली हैं। मुझे तो आराम हो ही गया है, अब कोई फिकरकी बात नहीं।"

शैलेनने कहा—"हाँ, अब कोई हर्ज नहीं जानेमें। थोड़ी-बहुत कमज़ोरी है, सो ठीक हो जायगी धीरे-धीरे। हमलोग हैं ही।"

भवानीचरणने कहा—"सो तो मैं जानता हूं, कालीचरणके लिए मुझे फिकर करनेकी जरूरत ही नहीं। मेरे न आनेपर भी तुम सब देख-भाल लेते। पर मन जो नहीं मानता। खासकर तुम्हारी दादीका हुक्म था, फिर भला कैसे नहीं आता।"

शैलेन हँसता हुआ बोला—"बाबा सा'ब, तुम्हींने तो लाड़ कर-करके उन्हें सिर चढ़ा लिया है !"

भवानीचरण भी हँस दिये, बोले—"अच्छा, अच्छा, घरमें जब नतबहू आयेगी, तुम्हारी शासनप्रणाली भी देख ली जायगी, कितनी कड़ाई होती है !"

भवानीचरण एकान्तरूपसे रासमणिकी सेवामें पले-हुए जीव थे। कलकत्तामें तरह-तरहकी आरामकी चीजें होनेपर भी रासमणिके हाथकी सेवाकी कमी वे महसूस न करते हों, सो बात नहीं। इसलिए, घर जानेके लिए उन्हें ज्यादा अनुरोध नहीं करना पड़ा।

सवेरे सामान बँधवाकर जानेकी तैयारी कर रहे थे कि इतनेमें कालीचरणके पास जाकर उन्होंने देखा कि उसकी आँखें लाल-सुर्ख हो रही हैं, देह आग-सी गरम है। कल आधी रात तक वह 'लौजिक' याद करता रहा है ; और बाकीकी रात करवट बदलते हुए बीती है, नींद नहीं आई।

अभी तक कालीचरण काफी कमजोर था, उसपर दुबारा बीमारीका हमला देखकर डाक्टर अत्यन्त चिन्तित हो उठे। शैलेनको अलग बुलाकर कहा—"अबकी बार तो बीमारीने बड़ा खतरनाक रास्ता पकड़ लिया मालूम होता है।"

शैलेनने भवानीचरणसे कहा—"बाबा सा'ब, तुम्हें भी तकलीफ है, और रोगीकी शायद ठीकसे सेवा भी नहीं हो रही है ; इसलिए मेरा कहना है कि दादीजीको यहीं बुला लिया जाय तो ठीक है।"

शैलेनने बात काफी घुमाकर कही थी, मगर फिर भी यकायक भवानीचरणका कलेजा बैठ गया। डर और आशंकासे हृदयकी धड़कन बढ़ गई और हाथ-पाँव काँपने लगे। बोले—"तुम लोग जो ठीक समझो सो करो।"

रासमणिको चिट्ठी दे दी गई, वे उसी वक्त बगलाचरणके साथ कलकत्ताके लिए रवाना हो गईं।

शामको कलकत्ता पहुँचनेके बाद रासमणिने कुछ ही घंटे बेटेको जिन्दा देखा ; उसके बाद सब खेल खतम। बायमें वह रह-रहकर माको पुकार रहा था ; उसकी वह पुकार माकी छातीमें हमेशाके लिए चुभी रह गई।

भवानीचरण इस चोटको सहकर कैसे जीयेंगे, इस डरसे रासमणिने अपने शोकको प्रकट नहीं होने दिया। उनका पुत्र फिर उनके पतिमें जाकर बिलीन हो गया, यह मानकर उन्होंने एक पतिकी सेवामें ही फिर दोनोंका भार अपने व्यथित हृदयपर उठा लिया। उनके प्राणोंने कहा, 'अब नहीं सहा जाता', फिर भी उन्हें सहना ही पड़ा।

५

रात तब काफी हो चुकी थी। गहरे शोककी जबरदस्त थकानसे, मात्र कुछ क्षणोंके लिए, रासमणिको बेहोशीकी नींद आ गई थी। पर भवानी चरणको नींद नहीं आई। कुछ देर तक वे करवट बदलते रहे; और फिर एक गहरी साँस लेकर 'दयामय भगवान!' कहते हुए उठ बैठे। कालीचरण जब गाँवकी पाठशालामें पढ़ता था और तब जिस कोनेवाले कमरेमें वह पढ़ा करता था, भवानीचरण काँपते हुए हाथमें एक दिआ उठाकर उस सूने कमरेमें पहुँच गये। रासमणिके हाथकी बनी बेल-बूटेदार गद्दी तख्तपर बिछी हुई थी। उसपर जगह-जगह स्याहीके दाग अब भी ज्योंके त्यों मौजूद हैं। मैली दीवारपर कोयलेसे खिंची-हुई ज्यामितिकी लकीरें दिखाई दे रही हैं। तख्तके एक कोनेपर घरकी-बनी मटमैले रंगकी कापियोंके साथ 'रायल रीडर'के कुछ फटे हुए पन्ने आज भी पड़े हैं। और – हाय-हाय, – उसके बचपनके छोटे-से पाँवकी सिर्फ एक चप्पल घरके एक कोनेमें पड़ी है, जिसे अब तक किसीने देखकर भी न देखा होगा, आज वह सबसे बड़ी होकर दिखाई दी; संसारमें आज ऐसी कोई बड़ी चीज ही नहीं कि जो उस छोटेसे जूतेको अपनी आड़में लेकर बापकी नजरसे उसे छिपा सके!

टीनके एक बकसपर दिआ रखकर भवानीचरण तख्तपर बैठ गये। उनकी सूखी आँखोंमें आँसू नहीं आये; पर उनकी छातीके भीतर कैसा तो हो गया, पूरी साँस लेनेमें मानो उनकी पसलियाँ फटने लगीं। पूरबकी तरफकी खिड़की खोलकर उसके सींखचे थामकर वे बाहरकी ओर देखने लगे।

अँधेरी रात है। थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है। सामने चहारदीवारीसे घिरा हुआ घना जंगल है। उसमें, ठीक पढ़नेके कमरेके सामने, थोड़ी-सी जमीनमें कालीचरणने बगीचा लगानेकी कोशिश की थी। अभी भी उसको अपने हाथकी लगाई हुई झुमकाकी बेल खपच्चियोंके बेड़ेमें काफी फैली हुई दिन-दूनी पनप रही है, उसपर बेदेह फूल खिले हुए हैं।

आज, उस बालकके हाथके बनाये-हुए उस छोटेसे बगीचेकी तरफ देखते ही भवानीचरणके प्राण कण्ठ तक आकर रुक गये। अब करने-लायक कोई आशा ही नहीं। पूजाकी छुट्टियाँ होंगी, गरमियोंकी छुट्टियाँ आयेंगी, पर जिसके लिए उनका गरीब घर सूना हो रहा है वह तो अब किसी दिन किसी भी छुट्टीमें घर नहीं लौटेगा। "अरे मेरे लाल!"— कहते हुए भवानीचरण वहीं जमीनपर बैठ रहे। कालीचरण अपने मा-बापकी गरीबी दूर करनेके इरादेसे ही कलकत्ता गया था, पर हाय री तकदीर, अपने बापको इस संसारमें वह बिलकुल ही गरीब लाचार करके चला गया।

बाहर, वर्षा और भी जोरसे होने लगी।

इतनेमें, अँधेरेमें घास-पत्तोंमें किसीके पैरोंकी आहट सुनाई दी। भवानी चरणकी छाती धड़कने लगी। जिसकी किसी भी तरह आशा नहीं की जा सकती उसकी भी वे आशा कर बैठे। उन्हें ऐसा लगा जैसे कालीचरण अपना बगीचा देखने आ रहा हो। 'लेकिन, जोरकी वर्षा जो हो रही है, वह भीज जायगा', इस असम्भव उद्वेगसे उनका मन भीतरसे जब अत्यन्त चंचल हो उठा, तो देखा कि क्षण-भरके लिए कोई खिड़कीके सामने आ खड़ा हुआ है। अपनेको वह सफेद चादरसे ढके हुए है, चेहरा पहचाननेमें नहीं आता। पर उसका डील कालीचरण जैसा ही मालूम होता है। भवानीचरण तुरत उठ खड़े हुए; और "आ गया बेटा!" कहते हुए दरवाजा खोलने चल दिये। दरवाजा खोलकर वे जल्दी-जल्दी वहीं पहुँचे जहाँ अभी-अभी उनका बेटा खड़ा दिखाई दिया था, खिड़कीके सामने। देखा, वहाँ कोई नहीं है! उस वर्षामें वे सारे बगीचेमें चक्कर काट आये, पर कोई नहीं मिला। उस निशीथ रातमें, गहरे अँधेरेमें खड़े होकर उन्होंने रुँधे हुए कण्ठसे पुकारा—"कालीचरण, बेटा!"

पर किसीने जवाब नहीं दिया। उनकी पुकार सुनकर जो दौड़ा आया, वह था उनका नौकर नटवर। वह उन्हें सम्हालता हुआ भीतर ले गया।

दूसरे दिन, नटवर जब उस कमरेमें झाड़ू लगाने गया तो देखा कि खिड़कीके सामने एक पोटली-सी पड़ी है। पोटली उठाकर वह सीधा भवानीचरणके पास पहुँचा। भवानीचरणने उसे खोलकर देखा तो कुछ पुराने दस्तावेज निकाले। चश्मा लगाकर जरा-सा पढ़ते ही वे चटसे उठ खड़े हुए और दौड़े-दौड़े रासमणिके पास पहुँचे।

कागजात हाथमें लेते हुए रासमणिने पूछा—"क्या है यह?"

भवानीचरण बोले—"वही पुराना वसीयतनामा!"

रासमणिने कहा—"किसने दिया?"

भवानीचरणने कहा—"कल रातको काली आया था, वही दे गया है।"

रासमणिने कहा—"क्या होगा अब इसका?"

भवानीचरणने कहा—"अब कोई जरूरत नहीं।" और स्त्रीके हाथसे लेकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

जब गाँवमें यह खबर फैल गई तो बगलाचरणने बड़े गर्वके साथ अपना सिर हिलाते हुए कहा—"देखा, मैंने तो पहले ही कह दिया था कि कालीचरणके हाथसे ही वसीयतनामा मिलेगा!"

रामचरण मोदीने कहा—"लेकिन कल रातको गाड़ीसे एक गोरा-सा लड़का आया था, उसने मेरी दूकानपर आकर चौधरियोंके मकानका रास्ता पूछा तो मैंने उसे रास्ता बता दिया था। उसके हाथमें कपड़ेमें बँधी कोई चीज मैंने देखी थी।"

"वाहियात!"— कहकर बगलाचरणने उसकी बात बिलकुल ही उड़ा दी।

# असंभव बात

'एक था राजा।'

बस, तब इससे ज्यादा जाननेकी कोई जरूरत ही नहीं थी। कहाँका राजा, नाम क्या, ये सब सवाल उठाकर कहानीके प्रवाहको कोई रोकता न था। राजाका नाम शिलादित्य था या शालिवाहन; काशी काञ्चि कन्नोज कोशल अंग बंग कलिंग इनमेंसे ठीक कहाँ उसका राज्य था, ये सब इतिहास-भूगोलके तर्क तब हमारे लिए बहुत ही तुच्छ थे, असलमें जिस बातको सुनते ही हृदय-मन पुलकित हो उठता था और सम्पूर्ण हृदय क्षण-भरमें बिजलीकी चालसे चुम्बककी तरह आकर्षित हो जाता था, वह थी—'एक था राजा।'

आजकलके पाठक मानो कमर कसके अड़ जाते हैं। और शुरूमें ही मान लेते हैं कि लेखक झूठी बात कह रहा है। इसलिए अत्यन्त सयानेकी तरह मुँह बनाकर पूछते हैं, 'लेखक महाशय, आप जो कह रहे हैं, एक था राजा, अच्छा बताइये तो सही, कौन था वह राजा?'

लेखक भी सयाने हो गये हैं, वे भी पुरातत्त्वके महापंडितकी तरह मुख-मण्डलको चौगुना मण्डलाकार बनाकर कहते हैं, 'एक था राजा, उसका नाम था अजातशत्रु।'

पाठक आँख मिचकाकर पूछते हैं, 'अजातशत्रु? अच्छा, बताइये कौनसा अजातशत्रु?

लेखक वैसा ही मुँह बनाये अविचलित भावसे कहता चला जाता है, 'अजातशत्रु हुए हैं तीन। एक ईसासे तीन हजार वर्ष पहले जन्म-ग्रहण करके दो वर्ष आठ महीनेकी अवस्थामें मर गये। खेदका विषय है कि उनके जीवनका विस्तृत विवरण किसी भी ग्रन्थमें नहीं पाया जाता।' आखिरको दूसरे अजातशत्रुके विषयमें दस ऐतिहासिकोंके दस विभिन्न मतोंको समालोचना समाप्त करके जब ग्रन्थके नायक तीसरे अजातशत्रु तक पहुंचे, तब पाठक मन-ही-मन

बोल उठे, 'बाप रे बाप, कैसा पांडित्य है ! एक कहानी सुननेमें कितनी शिक्षा मिली। इस आदमीपर अब अविश्वास नहीं किया जा सकता।' फिर पूछा, 'अच्छा, लेखक महाशय, उसके बाद फिर क्या हुआ ?'

हाय रे हाय, आदमी ठगाना ही चाहता है, ठगाया जाना ही अच्छा समझता है ; साथ ही कहीं कोई बेवकूफ न समझ ले, इस बातका भी डर उसे सोलह-आना रहता है ; और इसीलिए जी-जानसे वह सयाना बननेकी कोशिश करता है। उसका नतीजा यह होता है कि वही अन्तमें ठगाया जाता है, किन्तु बहुत आडम्बरके साथ। अंग्रेजीमें एक कहावत है, 'प्रश्न मत करो, नहीं तो झूठा जवाब सुनना पड़ेगा।' बालक इस बातको समझता है, वह कोई प्रश्न नहीं करता। इसलिए प्राचीन कहानियोंका सुन्दर झूठ बच्चेके समान नग्न है, सत्यके सामन सरल है, झरते हुए ताजे झरनेको तरह स्वच्छ है ; और आजकलका सुचतुर झूठ नकाबपोश झूठ है। कहीं भी यदि तिलमात्र भी छिद्र रह जाय तो चट भीतरसे भंडाफोड़ हो जाता है ; पाठक विमुख हो जाते हैं, और लेखकको भागे राह नहीं मिलती।

बचपनमें हमलोग दर-असल रसज्ञ थे ; इसीलिए जब-कभी कहानी सुनने बैठते थे, तो ज्ञान प्राप्त करनेका हमलोगोंमें रंचमात्र भी आग्रह न रहता था ; और अशिक्षित सरल हृदय ठीक समझ लेता था कि असली बात उसमें कौनसी है। और आजकल तो इतनी फालतू बातें बकनी पड़ती हैं, इतनी अनावश्यक बातोंकी जरूरत पड़ती है कि जिसकी हद नहीं। परन्तु अन्तमें उसी असली बातपर ही आकर पहुंचते हैं—'एक था राजा।'

मुझे खूब याद है, उस दिन शामको आंधी-मेह हो रहा था। ऐसा लगता था कि कलकत्ता शहर पानीसे बह जायगा। गलियोंमें घुटनों पानी जमा हो गया था। मुझे पूरी आशा थी कि आज मास्टर साहब न आयेंगे, परन्तु फिर भी उनके आनेके निश्चित समय तक भयभीत चित्तसे सड़ककी तरफ देखता हुआ बरामदेकी चौकीपर बैठा रहा। मेह जरा थमता-सा मालूम देता तो मैं एकाग्र चित्तसे प्रार्थना करने लगता, 'हे देवता, और थोड़ी देर तक, किसी तरह साढ़े सात बजेका वक्त पार कर दो !' मुझे ऐसा लगता कि सिर्फ इस वक्त नगरके एक

कोनेमें रहनेवाले व्याकुल बालकको मास्टरके कराल हाथसे रक्षा करनेके सिवा संसारमें वर्षाको और-कोई आवश्यकता ही नहीं। प्राचीनकालमें कोई एक निर्वासित यक्ष भी तो यही समझता था कि आषाढ़में मेघको और-कोई खास काम नहीं, इसलिए इस दुनियाको पार करके रामगिरिके शिखरपर बैठे-हुए एकमात्र विरहीको दुःखवार्ता अलकापुरीके मनोहर प्रासादके किसी वातायनमें बैठी हुई विरहिणीके पास ले जाना उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं, खासकर रास्ता जब कि ऐसा सुरम्य और उसकी हृदय-वेदना इतनी दुःसह है।

बालककी प्रार्थनाके अनुसार न सही, किन्तु धूम्र-ज्योति-सलिल-मरुतके किसी विशेष नियमानुसार भी तो वर्षा बन्द न हुई, लेकिन अफसोस कि मास्टर भी बन्द न हुआ। गलीकी मोड़पर ठीक समयपर एक परिचित छतरी दीखी, सारी आशाकी भाप मानो एक क्षणमें फटकर बाहर निकल गई, और मेरा मन मानो पसलियोंमें समा गया। पर-पीड़न पाप है, और उसकी अगर कोई ठीक सजा हो तो दूसरे जन्ममें अवश्य ही मैं 'मास्टर' होकर और मास्टर साहब 'छात्र' होकर जनमेंगे। इसके विरुद्ध बस सिर्फ एक ही आपत्ति है, वह यह कि मुझे मास्टर साहबका मास्टर होनेके लिए बहुत ही असमयमें इस संसारसे कूच करना पड़ेगा; इसलिए मैं हृदयसे उन्हें क्षमा करता हूँ।

छतरी देखते ही मैं वहाँसे भाग खड़ा हुआ। भीतर मा तब नानीके साथ आमने-सामने बैठी-हुई दिआके उजालेमें ताश खेल रही थी। मैं चुपकेसे जाकर एक तरफ सो गया। माने पूछा—"क्या हुआ?" मैंने हँड़िया-सा मुँह बनाकर कहा—"मेरी तबीयत खराब है, आज मैं मास्टर साहबसे पढ़ूँगा नहीं।"

आशा है, कोई अधेड़-उमरके सज्जन मेरी इस कहानीको न पढ़ेंगे, और न इसे स्कूलकी किसी संग्रह-पुस्तकमें ही उद्धृत किया जायगा। कारण मैंने जो काम किया था वह नीति-विरुद्ध था, और उसके लिए मुझे कोई सजा भी नहीं मिली; बल्कि उलटा मेरा असद् अभिप्राय ही सिद्ध हुआ था।

माने नौकरसे कह दिया—"तो आज रहने दे, मास्टरजीसे कह दे, चले जायँ।"

पर मा जिस तरह बेफिक्र होकर ताश खेल रही थी, उससे तो यही

मालूम हुआ कि माता अपने पुत्रकी बीमारीके उत्कट लक्षणोंको देख-भालकर मन-ही-मन हँसी। मैं भी बड़े आनन्दसे तकियेमें मुंह छिपाकर खूब हँसा, हम दोनोंका मन दोनोंसे छिपा न रहा।

लेकिन, यह बात सभी जानते हैं कि इस तरहकी बीमारीको ज्यादा देर तक ठहराये रखना रोगीके लिए बहुत ही कठिन है। मिनटें भी न बीतने पाईं कि नानीके पीछे पड़ गया —"नानी, एक कहानी कहो न!" दो-चार बार कहनेपर तो कोई जवाब ही न मिला। माने कहा —"ठहर जा बेटा, खेल खतम हो जाने दे।"

मैंने कहा—"नहीं, मा, खेल तुम कल खतम करना, आज नानीसे कहानी कहलवाओ।"

माने पत्ते फेंककर कहा—"जाओ चाची, उसके साथ कौन मगजपच्ची करे।"

शायद मनमें उन्होंने सोचा होगा कि 'मेरे तो कल मास्टर नहीं आयेंगे, मैं तो कल भी खेल सकती हूं।'

मैं नानीका हाथ पकड़कर सीधा उन्हें बिस्तरपर ले गया। पहले कुछ देर तक तकियेसे चिपटकर, पैर पटककर, लोट लगाकर मनकी खुशीको रोकता रहा; फिर बोला—"नानी, कहानी कहो न!"

उस समय भी बाहर रिमझिम-रिमझिम मेह बरस रहा था। नानीने मृदुस्वरमें कहना प्रारम्भ किया—

'एक था राजा।

उसके थी एक रानी।'—

ओःफ्, जान बची और लाखों पाये। प्यारी और कुप्यारी रानीकी बात सुनते ही छाती धड़क उठती। जानता था कि अभागी कुप्यारी रानीपर अब आफत आनेमें देर नहीं। और उसके पहलेसे ही मनपर एक बड़ी-भारी उत्कंठा सवार हो जाती।

जब सुना कि अब कोई चिन्ताकी बात नहीं, सिर्फ राजाके कोई पुत्र न होनेसे राजा व्याकुल हो रहे हैं, और देवतासे प्रार्थना करके कठिन तपस्या

करनेके लिए बनको जानेके लिए तैयार हैं, तब कहीं जानमें जान आई। पुत्रका न होना कोई दुःखकी बात है यह मैं नहीं समझता था; मैं सिर्फ इतना ही जानता था कि अगर कभी किसी बातके लिए वनमें जानेकी जरूरत आ सकती है तो वह सिर्फ मास्टरके हाथसे छुटकारा पानेके लिए।

रानी और एक नन्ही-सी लड़कीको महलमें छोड़कर राजा तपस्या करने चले गये। एक वर्ष, दो वर्ष, होते-होते बारह वर्ष बीत गये। फिर भी राजा नहीं लौटे।

इधर राजपुत्री सोलह वर्षकी युवती हो गई। ब्याहकी उम्र पार हो गई, पर राजा नहीं लौटे तो नहीं ही लौटे।

लड़कीके मुंहकी तरफ देख-देखकर रानीका खाना-पीना भी छूट गया—'मेरी ऐसी सोनेकी लड़की क्या सदा कुंआरी ही रहेगी? हाय, मेरी तकदीरमें क्या यही लिखा था!'

अन्तमें रानीने राजाको बड़े अनुनय-विनयके साथ कहला भेजा—"मुझे और कुछ नहीं चाहिए, तुम एक दिन मेरे घर आकर सिर्फ भोजन कर जाओ।"

राजाने कहा—"अच्छा।"

रानीने उस दिन बड़े जतनसे चौंसठ तरहके व्यंजन अपने हाथसे बनाये, और उन्हें सोनेके थाल और चाँदीकी कटोरियोंमें परोसकर चन्दनका पटा बिछा दिया। राजकुमारी चँवर हाथमें लिये खड़ी हो गई।

राजा आज बारह वर्ष बाद अन्तःपुरमें आकर भोजन करने बैठे। राजकुमारी अपने रूपका प्रकाश फैलाती हुई चँवर ढारने लगी।

राजा लड़कीके मुंहकी ओर देखते जायँ और खाना भूलते जायँ। अन्तमें रानीके मुंहकी ओर देखकर पूछा—"क्यों रानी, ऐसी सोनेकी प्रतिमा लक्ष्मी-सी यह लड़की कौन है? यह किसकी लड़की है?"

रानीने माथेपर हाथ दे मारा, बोलीं—"हाय री मेरी तकदीर! इसे भी नहीं पहचान सके? यह तो तुम्हारी ही लड़की है।"

राजाने आश्चर्यके साथ कहा—"मेरी वह जरासी लड़की, अब इतनी बड़ी हो गई है !"

रानीने एक लम्बी सांस ली और कहा—"सो होगी नहीं ! तुम्हें गये आज बारह वर्ष हो गये !"

राजाने पूछा—"इसका ब्याह नहीं किया ?"

रानीने कहा—"तुम थे नहीं, उसका ब्याह कौन करता ? मैं खुद जाती क्या लड़का ढूंढ़ने !"

सुनते ही राजाने सहसा बड़ी घबड़ाहटके साथ कहा—"ठहरो, मैं कल सवेरे ही उठकर राजद्वारपर जिसका मुंह देखूंगा, उसीके साथ इसका ब्याह कर दूँगा ।"

राजकुमारी चँवर ढारने लगी । उसके हाथके कड़े और चूड़ियोंमें ठुनठुन आवाज होने लगी । राजाका भोजन हो गया ।

दूसरे दिन सवेरे ही सोतेसे उठकर राजाने बाहर जाकर देखा कि एक ब्राह्मणका लड़का राज-महलके बाहर जंगलमें सूखी लकड़ियां बीन रहा है । उसकी उमर सात-आठ बरसकी होगी ।

राजाने कहा—"इसीके साथ मैं अपनी पुत्रीका ब्याह कर दूँगा ।" राजाका हुक्म, भला कौन टाल सकता था ! उसी समय लड़केको पकड़कर उसके साथ राजकुमारीकी माला बदल दी गई ।

इस समय मैं नानीसे बिलकुल सट गया था । मैंने अत्यन्त उत्सुकताके साथ नानीसे पूछा—"फिर ?" तब क्या मेरे मनमें अपनेको उस सात-आठ बरसके सौभाग्यवान लकड़ी बीननेवाले ब्राह्मण बालकका स्थानापन्न बनानेकी जरा भी इच्छा नहीं हुई थी ? जब उस रातको झम-झम मेह बरस रहा था, घरके एक कोनेमें दिआ टिमटिमा रहा था, और धीमे स्वरसे नानी उस मशहरीके भीतर कहानी कह रही थी, तब क्या बालक-हृदयके विश्वास-परायण रहस्यमय अनाविष्कृत एक छोटेसे कोनेमें ऐसी एक अत्यन्त सम्भवनीय तसवीर नहीं जाग उठी थी कि मैं भी एक दिन सवेरे किसी एक राजाके देशमें राजाके द्वारके सामने लकड़ी बीन रहा हूं, सहसा

एक सोनेकी प्रतिमा लक्ष्मीके समान सुन्दर राजकुमारीके साथ मेरी माला बदल दी गई ; माथेपर उसके माँग है, कानोंमें कर्नफूल हैं, गलेमें चन्द्रहार है, हाथोंमें उसके कंकण हैं, कमरमें करधनी है और मेहदीसे रंगे हुए पैरोंमें छमछम नूपुर बज रहे हैं।

परन्तु मेरी वह नानी यदि लेखकका जन्म लेकर आजकलके सयाने पाठकोंके सामने यह कहानी कहती, तो इस बीचमें उसे कितना हिसाब देना पड़ता ? पहले तो, राजा बारह वर्ष तक वनमें ही बैठा रहा और उतने दिनों तक राजकुमारीका ब्याह ही नहीं हुआ, एकस्वरसे सभी कहते कि यह असम्भव है। पहली बात तो यह कि ऐसा कभी होता नहीं ; दूसरे, सभी आशङ्का करते कि ब्राह्मणके लड़केके साथ क्षत्रिय कन्याका विवाह कराकर लेखक अवश्य ही लोगोंको धोखेमें डालकर समाज-विरुद्ध मतका प्रचार कर रहा है। परन्तु पाठक ऐसे भोले नहीं, और न लेखकोंके नाती ही ऐसे भोंदू हैं जो सब बात चुपचाप सुनते जाते। वे पत्रोंमें समालोचना करते। इसलिए मैं एकाग्र मनसे प्रार्थना करता हूं कि नानी फिरसे 'नानी' होकर ही पैदा हों, अभागे नातीकी तरह उन्हें ग्रह-दोषसे कहीं 'लेखक' न बनना पड़े।

मैंने अत्यन्त पुलकित होकर काँपते हुए हृदयसे पूछा—"फिर ?"

नानी कहने लगी—

फिर राजकुमारी उदास होकर उस छोटेसे दूल्हाको लेकर चली गई।

बहुत दूर किसी दूसरे देशमें जाकर राजकुमारीने एक बड़ा-भारी महल बनवाया ; और उसमें उस ब्राह्मणके लड़केको, अपने उस छोटेसे दूल्हाको, बड़े जतनसे पाल-पोसकर बड़ा करने लगी।

मैंने जरा इधर-उधर हिल-डुलकर बगलके तकियेको और भी जरा जोरसे दबाकर पूछा—"फिर ?"

नानीने कहा—फिर वह लड़का पुस्तक हाथमें लेकर पाठशाला जाने लगा।

इस तरह, पंडितजीसे अनेक विद्याएँ सीखता हुआ लड़का धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसके साथके लड़के उससे पूछने लगे,

'उस सात मँजिले महलमें तुम्हारे साथ जो लड़की रहती है, वह तुम्हारी कौन लगती है ?'

अब तो वह बड़े चक्करमें पड़ गया ; किसी भी तरह उससे ठीक जवाब देते न बना कि वह लड़की उसकी कौन होती है। जरा-जरा याद आता है, एक दिन सवेरे राजाके महलके सामनेवाले जङ्गलमें वह लकड़ी बीनने गया था, परन्तु उस दिन न-जाने किस गड़बड़ीमें पड़कर वह लकड़ी न बीन सका। वह बहुत दिनकी बात है, उसे सब याद थोड़े ही है। इस तरह चार-पाँच वर्ष बीत गये। साथके लड़के रोज ही उससे पूँछते—'अच्छा, जो उस सत मँजिले महलमें बहुत ही सुन्दर एक लड़की रहती है, वह तुम्हारी कौन लगती है ?'

ब्राह्मणने एक दिन पाठशालासे लौटकर बड़े उदास मनसे राजकुमारीसे कहा—' मुझसे पाठशालाके सब लड़के रोज-रोज पूछा करते हैं कि वह जो सत-मँजिले महलमें एक परम सुन्दरी लड़की रहती है, वह तुम्हारी कौन लगती है ? मुझसे इसका कोई जवाब देते नहीं बनता। तुम मेरी कौन लगती हो, बताओ ?"

राजकुमारीने कहा—"आज रहने दो। यह बात और किसी दिन बताऊँगी।"

ब्राह्मणका लड़का प्रतिदिन पाठशालासे आकर पूछता—"तुम मेरी कौन लगती हो ?"

राजकुमारी प्रतिदिन उत्तर देती—"आज नहीं, फिर कभी बताऊँगी।"

इस तरह और भी चार-पाँच वर्ष बीत गये। आखिर एक दिन ब्राह्मणने बहुत गुस्सेमें आकर कहा—"आज अगर तुम न बताओगी कि तुम मेरी कौन हो, तो मैं तुम्हारे इस महलको छोड़कर और-कहीं चला जाऊँगा।"

तब राजकुमारीने कहा—"अच्छा, कल जरूर बता दूंगी।"

दूसरे दिन ब्राह्मणके लड़केने पठशालासे वापस आते ही राजकुमारीसे कहा—"आज कहनेको कहा था, बताओ अब ?"

राजकुमारीने कहा—"आज रातको भोजन करके जब तुम सोने लगोगे तब बताऊँगी।"

ब्राह्मणने कहा—"अच्छा।" कहकर सूर्यास्तकी प्रतीक्षामें वह पहर गिनने लगा।

इधर राजकुमारीने सोनेके पलंगपर सफेद फूलोंकी सेज बिछाई। घरमें सोनेके दीओंमें सुगन्धित तेल डालकर रोशनी की; और जूड़ा बाँधकर नीलाम्बरी साड़ी पहनकर खूब शृंगार करके बैठी-बैठी पहर गिनने लगी, कब रात हो।

रातको उसका पति किसी तरह भोजन समाप्त करके शयन-घरमें सोनेके पलंगपर, फूलोंकी सेजपर, जाकर लेट रहा। सोचने लगा, 'आज मालूम होगा, इस महलमें जो सुन्दरी रहती है वह मेरी कौन होती है।'

राजकुमारीने अपने पतिके थालका प्रसाद खाकर धीरे-धीरे शयन-घरमें प्रवेश किया। 'आज बहुत दिन बाद प्रकट-रूपसे कहना होगा, इस सतमँजिले महलकी एकमात्र अधीश्वरी, मैं, तुम्हारी कौन लगती हूं।'

कहनेके लिए ज्यों ही उसने पलंगपर पैर रखा, देखा कि फूलोंके अन्दर एक साँप है, उसके पतिको उसने डस लिया है। पतिका मृत शरीर मलिन होकर सोनेके पलंगपर फूलोंकी सेजपर पड़ा हुआ है।

—सुनते ही मानो मेरे भी हृदयका स्पन्दन सहसा बन्द हो गया। मैंने रुँधे हुए स्वरमें उदास होकर पूछा—"फिर क्या हुआ?"

नानी फिर कहने लगीं। लेकिन अब उस बातकी क्या जरूरत है? वह तो और भी असम्भव बात है। कहानीका प्रधान नायक साँपके काटनेसे मारा गया, फिर भी 'फिर?' तब मैं बच्चा था, तब मैं जानता न था कि मौतके बाद भी एक 'फिर' हो सकता है, परन्तु उस 'फिर' का उत्तर कोई नानीकी नानी भी नहीं दे सकती। विश्वासके बलपर सावित्रीने मृत्युका भी पीछा किया था। बालकको भी प्रबल विश्वास है। इसलिए वह मृत्युका अंचल पकड़कर उसे लौटाना चाहता है, उसकी समझमें यह बात किसी भी

तरह नहीं आती कि उसको यह मास्टर-हीन रातकी इतनी साधकी कहानी सहसा एक साँपके काटनेसे मारी गई ! इसलिए नानीको उस महापरिणामके विरुद्ध गृहसे कहानीको फिरसे वापस लाना पड़ता है ।

परन्तु उनका यह काम इतनी स्वाभाविकतासे और इतनी सरलतासे होता है कि उस झमझम बरसाकी रातमें टिमटिमाते हुए दिआके उजालेमें बालकके मनमें मृत्युकी मूर्ति अत्यन्त अकठोर मालूम होने लगती है ; फिर उसे वह रातकी एक सुख-निद्रासे ज्यादा नहीं मालूम होती । कहानी जब खतम हो जाती है तो आरामसे थकी-हुई दोनों आँखें अपने-आप मुंद जाती हैं, तब भी तो बालकके छोटेसे प्राणको किसी स्निग्ध निस्तब्ध निस्तरङ्ग स्रोतमें सुषुप्तिकी नावमें सुलाकर बहा दिया जाता है, उसके बाद सवेरेके वक्त न-जाने कौन दो-एक माया-मन्त्र पढ़कर उसे इस संसारके अन्दर जाग्रत कर देता है ।

परन्तु जिसे विश्वास नहीं है और जो डरपोक इस सौन्दर्यके आस्वादनके लिए भी एक इञ्चके बराबर असम्भवको लंघन नहीं कर सकता, उसके लिए कहीं भी किसीमें 'फिर' नहीं है ; उसके लिए दुनियाका सब-कुछ असमयमें असमाप्तिमें समाप्त हो गया है । बचपनमें सात समुन्दर पार होकर, मृत्युको भी लाँघ कर कहानीका जहाँ यथार्थमें विराम होता था वहाँ स्नेहमय मीठे स्वरमें सुनते थे :—

"इत्ती कहानी,
बोदा रानी ।
बोद बुदक्कड़,
चूल्हे पे लक्कड़ ।
चूल्हे ऊपर चकटी,
लल्लाकी सास नकटी ।"*

---

* पाठभेद :—' इतनी कहानी, पौता रानी,
चूल्हेकी दौरानी ।

मगर अब उमर बहुत हो चुकी है, अब कहानीके ठीक बीचमें सहसा ठिठककर एक निष्ठुर कठोर कंठ सुनाई देता है :—

बस, इतनी ही कहानी ।
लेखककी नानी ।
लेख लिखक्कड़,
माथेपै लक्कड़ ।
माथे ऊपर चकटी,
लेखककी······

बस, अब नहीं कहते ; न-जाने कौन किसपर घटा ले ।

---

काम-काजको थरथर कांपे,
खानेको मस्तानी ।"
और
"कानी-सी मखानी डोलै
जैसे बरधा घानीकौ ।
दार करी अरौनी,
बुरे-भले दो जैमन आये,
दै दियौ छींटा पानीकौ,
देखो करतब का'नीकौ ।"

# बेटा

## १

बैजनाथ गाँव-भरमें सबसे ज्यादा समझदार और अनुभवी व्यक्ति थे; और इसीलिए वे हमेशा भविष्यका खयाल रखकर वर्तमान काम करते थे। जब उन्होंने ब्याह किया था तब नई बहूकी अपेक्षा नये बच्चेका मुखड़ा ही उनके सामने ज्यादा स्पष्ट होकर दिखाई दिया था। सचमुच, ब्याहमें शुभदृष्टिके समय इतनी दूरदृष्टि बहुत कम लोगोंमें ही पाई जाती है। बैजनाथ पक्के दुनियादार थे, लिहाजा प्रेमकी अपेक्षा पिण्ड ही उनकी दृष्टिमें ज्यादा महत्त्वपूर्ण था; और 'पुत्रार्थे क्रीयते भार्या' के अनुसार ही उन्होंने विनोदिनीके साथ ब्याह किया था।

लेकिन अफसोस इस बातका है कि दुनियामें पक्के दुनियादार ही ठगाये जाते हैं। पूरा यौवन पाकर भी जब विनोदिनीने अपना सबसे पहला फर्ज अदा नहीं किया, तो सन्तान-शून्य बैजनाथ अपने लिए 'पुन्नाम' नरकका दरवाजा खुला देखकर अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उनके मरनेके बाद उनकी विशाल सम्पत्तिका कौन भोग करेगा, इस चिन्तामें वे मरनेके पहले ही अपनी सम्पत्तिके भोगसे मुंह मोड़ बैठे। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि वर्तमानकी अपेक्षा वे भविष्यको ही ज्यादा सत्य समझते हैं।

लेकिन युवती विनोदिनीसे यकायक इतनी समझदारीकी उम्मीद नहीं की जा सकती। उस बेचारीका दुर्मूल्य वर्तमान, उसका नव-विकसित यौवन, बिना प्रेमके व्यर्थ ही बीता जा रहा है – उसके लिए यही सबसे बड़ी दुश्चिन्ता थी। पारलौकिक पिण्डकी भूखको वह इहलौकिक मनकी भूखकी ज्वालाके आगे बिलकुल भूल ही बैठी थी। मनुके पवित्र विधान और बैजनाथकी आध्यात्मिक व्यथासे उसके प्यासे हृदयको जरा भी तृप्ति नहीं हुई।

कोई कुछ भी कहे, पर इस उमरमें तो प्रेम करना और प्रेम पाना ही स्त्रियोंके लिए सबसे बड़ी बात है; इसके आगे संसारका कोई भी सुख और कर्तव्य टिक नहीं सकता।

लेकिन विनोदिनीके भाग्यमें नये प्रेमकी वर्षा होनेके बजाय खुद पति, फुफुआ-सास, घरके गुरुजन और गुरुतर जनोंके सम्मिलित आकाशसे तर्जन-गर्जनके साथ ओले बरसने लगे। सभी-कोई उसे बाँझ कहके कसूरवार ठहराने लगे। बेचारी विनोदिनीके वंचित यौवनका वही हाल हुआ जो कोमल फूलके पौधेको प्रकाश और हवासे हटाकर अँधेरी कोठरीमें बन्द कर देनेसे होता है।

दिन रात इस तरहकी कानाफूसी और कलह-क्लेसमें रहते रहते जब उसका जी ऊब जाता, तो वह पड़ोसिन कुसुमके यहाँ ताश खेलने चली जाती; और उसमें उसका खूब मन लग जाता। वहाँ 'पुत्' नरककी कराल मूर्ति सर्वदा मौजूद न रहनेसे हँसी-मजाक और गप-शप करनेमें कोई बाधा नहीं थी।

जिस दिन खेलनेके लिए साथीकी कमी पड़ जाती, उस दिन कुसुम अपने तरुण देवर नगेन्द्रको पकड़ लाती। विनोदा आपत्ति करती। पर नगेन्द्र विनोदाकी आपत्तिको हँसकर उड़ा देता; और पत्ते बाँटने बैठ जाता। दुनियामें आदमी सोचता कुछ है और होता कुछ और-ही है। यह ताशका खेल आगे चलकर कभी संकटमें परिणत हो सकता है, ऐसी पेचीली बातपर कम उमरमें सहसा किसीको विश्वास नहीं हो सकता।

इस विषयमें नगेन्द्रके संकोचकी दृढ़ता भी धीरे-धीरे हवा हो गई। अब वह ताश खेलनेके लिए ज्यादा बुलावेकी प्रतीक्षा नहीं करता।

इस तरह विनोदाके साथ नगेन्द्रका अकसर मेल-मिलाप होने लगा।

नगेन्द्र जब ताश खेलने बैठता तब उसका मन और दृष्टि निर्जीव ताशकी अपेक्षा सजीव विनोदाकी ओर ही अधिक आकृष्ट होनेसे अक्सर वह हारने लगता। इस हारका वास्तविक कारण कुसुम और विनोदा दोनोंसे छिपा न रहा। पहले ही कह चुके हैं कि कर्म-फलकी महत्ता समझना कम-उमरके बूतेसे बाहरकी बात है। कुसुम सोचती कि यह बड़ा मजा हो रहा है, और आग्रहके साथ कल्पना करती कि यह मजा क्रमशः पूरे सोलह-आनेमें परिणत होकर शीघ्र ही भरपूर हो उठे तो अच्छा। प्रेमके नवाङ्कुरमें छिपे-छिपे पानी सींचना तरुणियोंके लिए सबसे बढ़कर कौतुककी बात होती है।

विनोदाको भी बुरा नहीं लगा। हृदय जीतनेके तेज अस्त्रको

किसी और पुरुषपर पनानेकी इच्छा करना अन्याय हो सकता है, पर अस्वाभाविक हरगिज नहीं।

इस तरह, ताशकी हार-जीतके चक्करमें कब किस समय दोनों खिलाड़ियोंके हृदयोंमें मेल हो गया, अन्तर्यामीके सिवा एक दूसरे खिलाड़ीने भी देखा ; और वह बहुत खुश हुआ।

२

एक दिन दोपहरको विनोदा कुसुम और नगेन्द्र तीनों ताश खेल रहे थे। खेलते-खेलते, कुछ देर बाद कुसुम अपने बीमार बच्चेका रोना सुनके वहाँसे उठके चली गई। नगेन्द्र विनोदाके साथ बातें करने लगा। पर दोनोंमेंसे यह कोई भी यह न समझ सका कि आखिर क्या बातें हो रही हैं। दोनोंकी देहका रक्तस्रोत हृदयको उद्वेलित करके नसोंमें तरंगें लेने लगा।

सहसा नगेन्द्रके उन्मत्त यौवनने सारे बाँध तोड़ डाले, अचानक उसने विनोदाके दोनों हाथोंको मसककर जोरसे अपनी ओर खींच लिया ; और उसका चुम्बन ले लिया। विनोदा नगेन्द्रके हाथसे इस तरह अपमानित होकर क्रोध क्षोभ और लज्जासे अधीर होकर अपने हाथ छुड़ानेके लिए खींचातानी कर रही थी ; इतनेमें दोनोंने देखा कि कमरेमें तीसरा कोई घुस आया है। नगेन्द्र नीचेको निगाह किये बाहर निकल भागनेका रास्ता ढूँढ़ने लगा।

नौकरानीने गम्भीर स्वरमें विनोदासे कहा—"बहूजी, आपको बुआजी बुला रही हैं!"

विनोदा छलछलाती हुई आँखोंसे नगेन्द्रपर बिजली-सी डालती हुई दासीके साथ चली गई।

दासीने जितना देखा था उससे कुछ घटाकर और जितना नहीं देखा उसमें कुछ नमक-मिर्च मिलाकर ऐसा वर्णन पेश किया कि बैजनाथके घरमें बड़ा-भारी तूफान उठ खड़ा हुआ। विनोदाकी क्या दशा हुई, वर्णनकी अपेक्षा उसकी कल्पना करना ही सहज है। वह कहाँ तक निपराध है, इस बातको समझानेकी उसने कोशिश तक नहीं की; उसपर जो कुछ लाञ्छन लगाये गये, उन्हें वह चुपचाप सिर नीचा किये सहती गई।

बैजनाथने अपने भावी पिंडदाताके आविर्भावकी संभावनाको बिलकुल असम्भव जानकर विनोदासे कहा—"कलंकिनी, तू मेरे सामनेसे दूर हो जा। घरसे निकल जा!"

विनोदा अपने कमरेमें जाकर दरवाजा बन्द करके बिस्तरपर पड़ रही। उसकी बिना आँसूकी आँखें दोपहरकी मरुभूमिकी तरह जलने लगीं। जब संध्याका अन्धकार घना हो आया और बगीचेमें कौओंकी काँवकाँव बिलकुल थम गई, तब नक्षत्रोंसे जड़े हुए शान्त आकाशकी ओर देखकर उसे अपने मा-बापकी याद आने लगी; और दोनों गालोंसे टपटप आँसू गिरने लगे।

उसी रातको विनोदा अपने पति और पतिका घर छोड़कर हमेशाके लिए न-जाने कहाँ चली गई। किसीने उसकी खोज-खबर तक नहीं ली।

तब तक विनोदाको यह मालूम भी न था कि 'प्रजनार्थं महाभागा' स्त्री-जन्मका महाभाग्य उसे प्राप्त हो चुका है, उसके पतिकी पारलौकिक सद्गतिने बच्चेके रूपमें उसके गर्भमें आकर आश्रय लिया है।

## ३

उस घटनाके बाद दस वर्ष बीत गये।

इस बीचमें बैजनाथकी साम्पत्तिकी हालत भी पहलेसे काफी उन्नत हो चुकी है। अब वे गाँव छोड़कर कलकत्ता आ गये हैं, और आलीशान मकान खरीदकर वहीं रहने लगे हैं।

लेकिन जितनी ही सम्पत्ति बढ़ने लगी, सम्पत्तिके उत्तराधिकारीके लिए उनका मन उतना ही व्याकुल होने लगा।

इसके बाद उन्होंने दो ब्याह और किये। मगर पुत्र न पैदा होकर सिर्फ कलह ही पैदा होने लगी। ज्योतिषियों और संन्यासी-अवधूतोंसे घर भर गया। जड़ी-बूटी, झाड़-फूँक, तावीजों और पेटेन्ट दवाओंका ताँता बँध गया। कालीघाटमें इतने बकरीके बच्चे काटे गये कि अगर उनकी हड्डियोंका स्तूप बनाया जाता, तो उसके आगे तैमूरलंगका कंकाल-जयस्तम्भ भी झख मारता। मगर फिर भी, कुछ इनी-गिनी हड्डियों और बहुत ही थोड़े मांससे बना हुआ एक छोटेसे छोटा बच्चा भी बैजनाथके विशाल प्रासादका एक कोना तक दखल करता हुआ न दिखाई दिया। और इस दुश्चिन्तामें कि किसी दिन आँख मिचनेपर, उनके पीछे, किसी दूसरेका लड़का आकर उनकी दौलतपर दखल जमायेगा और मनमाना खायेगा-पीयेगा-उड़ायेगा, उनका अपना खाना-पीना भी छूट गया। होते-होते ऐसा हो गया कि उन्हें कोई भी बात नहीं रुचने लगी।

बैजनाथने अन्तमें और एक विवाह किया। कारण, संसारमें

आशाका भी अन्त नहीं ; और कन्या-भार-ग्रस्तोंके घर कन्याओंकी भी कमी नहीं।

ज्योतिषियोंने जन्मपत्री देखकर बताया कि इस कन्याके पुत्र-स्थानमें जैसा शुभयोग दिखाई देता है, उससे तो बैजनाथके घर सन्तान होनेमें जरा भी देर न होनी चाहिए। पर अफसोस कि छै वर्ष बीत गये, फिर भी पुत्रस्थानके शुभयोगसे आलस छोड़कर उठते नहीं बना।

निराशासे बैजनाथकी कमर झुक गई। अन्तमें शास्त्रज्ञ पण्डितोंकी सलाहसे काफी रुपये खर्च करके महायज्ञका आयोजन किया गया, जिसमें महीनोंसे अनेक ब्राह्मणोंकी सेवा-भक्ति चलने लगी।

इसी समय, देशमें बड़ा-भारी अकाल पड़ गया। अकालके मारे गरीबोंका हाल बेहाल था। लोग भूखसे तड़पते हुए दाने-दानेके लिए भटक रहे थे। जिस समय बैजनाथ अपनी अथाह सम्पत्तिमें बैठे हुए सोच रहे थे कि 'मेरा अन्न खायगा कौन', ठीक उसी समय भूखसे तड़पते हुए देशवासी अपने जलते हुए खाली पेटकी ओर देखकर सोच रहे थे कि 'खाँय क्या ?'

ठीक इसी समय चार महीने तक बैजनाथकी चतुर्थ सहधर्मिणी एक सौ ब्राह्मणोंका पादोदक पान कर रही थीं ; और, रोज सबेरे सैकड़ों ब्राह्मण तोंद भरकर भोजन और शामको भर-पेट जलपान करके सड़कपर घी चीनी दही मिठाईसे सनी पत्तलों और सकोरोंका कूड़ा इकट्ठा करनेमें लगे हुए थ। अन्न और मिठाईकी महक पाकर जब फाटकपर अकाल-पीड़ित भूखी जनताकी भीड़

उमड़ पड़ी, तो उसे तितर-बितर करनेके लिए दरबान तैनात किये गये ; और शायद पुलिसको भी इत्तिला दे दी गई।

एक दिन सवेरे बैजनाथ बाबूके आँगनमें संगमरमरके चबूतरे पर आसन जमाये एक स्थूलोदर साधु-महात्मा दो सेर मोहनभोग और डेढ़ सेर दूधका भोग लगा रहे थे ; और भक्ति-भारसे नम्र बैजनाथ पट्टवस्त्र पहने सामने जमीनपर बैठे उनके आशीर्वादकी कामना कर रहे थे। इतनेमें किसी तरह दरबानोंकी निगाह बचाकर अपने दुबले-पतले कमजोर लड़केके साथ फटे-चिथड़े पहने हुए एक मरीज-सी औरत वहाँ घुस आई। उसने अत्यन्त क्षीणस्वरमें कहा—"बाबूजी, कुछ खानेको—"

बैजनाथ हड़बड़ाकर उठ बैठे ; और चिल्लाने लगे—"*गुरदयाल, गुरदयाल !*" बाबू साहबका रंगढंग देखकर बेचारी सिटपिटा गई ; फिर भी हिम्मत बाँधकर बड़ी दीनतासे बोली—"बाबूजी, इस बच्चेको, बच्चेको दो रोटी डलवा दीजिये। भूखके मारे दम टूट रहा है इसका। मुझे नहीं चाहिए, बच्चेको—"

फौरन ही गुरदयालने आकर मा और बेटेको धक्के देकर निकाल बाहर किया।

हाय री दुरदृष्टि ! भूखसे तड़पता हुआ भिखारिनका वह बच्चा बैजनाथका ही इकलौता बेटा था ! सैकड़ों हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण और बीसों बलिष्ठ साधु-संन्यासी बैजनाथको पुत्र-प्राप्तिकी दुराशामें फँसाकर आनन्दसे हलुआ-पूड़ी उड़ाते रहे, पर उनके खास बेटेके लिए उसमेंसे एक दाना भी मुयस्सर न हुआ !

# उद्धार

गौरी पुराने अमीर-खानदानकी बड़े लाड़-प्यारमें पली सुन्दर लड़की है। उसके पति पारसकी हालत पहले बहुत ही गिरी हुई थी; पर अब अपनी कमाईके बूतेपर उसने कुछ तरक्की की है। जब तक वह गरीब था तब तक उसके सास-ससुरने इस खयालसे कि लड़की तकलीफ पायेगी, बहूकी बिदा नहीं की। गौरी कुछ ज्यादा उमरमें ही ससुराल आई।

शायद इन्हीं कारणोंसे पारस अपनी सुन्दरी युवती स्त्रीको सम्पूर्णत: अपने हाथकी चीज नहीं समझता था; और मिजाजमें वहम तो उसके, बीमारी बनकर समा गया था।

पारस पछाँहके एक छोटेसे शहरमें वकालत करता है। घरमें अपने कुटुम्बका कोई न था; अकेली स्त्रीके लिए उसका चित्त सदा उद्विग्न बना रहता। बीच-बीचमें वह अचानक असमयमें अदालतसे घर चला आता। शुरू-शुरूमें पतिके इस तरह आकस्मिक आगमनका कारण गौरीकी कुछ समझमें न आया; बादमें क्या समझी, सो वही जाने।

बीच-बीचमें वह बिना-कारण नौकर भी छुड़ा देने लगा। किसी भी नौकरका ज्यादा दिन तक बना रहना उसे बरदाश्त नहीं होता। खासकर कामकी परेशानीका खयाल करके गौरी जिस नौकरको रखनेके लिए ज्यादा आग्रह करती उसे तो वह फौरन ही निकाल बाहर करता। तेजस्विनी गौरीको इससे जितनी ही चोट पहुंचती, उसका पति उतना ही चंचल होकर

कभी-कभी ऐसा विचित्र बरताव कर बैठता कि जिसका ठीक नहीं।

अन्तमें जब वह अपनेको सम्हाल न सका और दासीको एकान्तमें बुलाकर उससे तरह-तरहके बहमके सवाल करने लगा, तब सब बातें गौरीको भी मालूम होने लगीं। अभिमानिनी स्वल्प-भाषिणी नारी अपमानकी चोट खाकर सिंहनीकी तरह भीतर ही भीतर उफनने और घुमड़ने लगी ; और इस उन्मत्त सन्देहने दम्पतिके बीचमें पड़कर खंडप्रलयकी तरह दोनोंको बिलकुल विच्छिन्न कर दिया।

गौरीके आगे अपना गहरा सन्देह प्रगट करनेके बाद पारसकी झिझक और शरम जब बिलकुल ही जाती रही तब वह रोजमर्रा साफ-साफ कदम-कदमपर सन्देह प्रकट करके स्त्रीसे लड़ने लगा। और, गौरी जितनी ही गम खाकर खामोशी-शुदा अवज्ञा और तीखी निगाहोंके तेज तीरोंसे, नीचेसे लेकर ऊपर तक, उसके सारे बदनको लहू-लुहान करने लगी, उसका सन्देहका पागलपन मानो उतना ही बढ़ता चला गया।

इस तरह, दाम्पत्य-सुखसे वंचित पुत्रहीन तरुणीने अपना सारा अन्तःकरण धर्ममें लगा दिया। हरि-भजन-सभाके नवीन प्रचारक ब्रह्मचारी परमानन्द स्वामीको बुलाकर गौरीने उनसे दीक्षा-मंत्र लिया ; और भागवतकी व्याख्या सुनने लगी। नारी-हृदयका सम्पूर्ण व्यर्थ-स्नेह एकमात्र भक्तिके रूपमें इकट्ठा होकर गुरुदेवके चरणोंमें लोटने लगा।

परमानन्दके साधुचरित्रके सम्बन्धमें किसीको भी सन्देह न था। सभी उनकी पूजा करते थे। किन्तु पारस उनके सम्बन्धमें

मुंह खोलकर सन्देह प्रकट न कर सकनेके कारण अत्यन्त व्याकुल हो उठा, और उसका सन्देह अदीठ-फोड़ेकी तरह क्रमशः खुद उसीके मर्मस्थलको कुरेद-कुरेदकर खाने लगा।

एक दिन जरा-सी किसी बातपर जहर बाहर निकल आया। स्त्रीके सामने वह परमानन्दको 'दुश्चरित्र' 'पाखंडी' कहकर गाली देने लगा ; और कहते-कहते कह बैठा—"तुम अपने शालग्रामको छूकर [illegible] बताओ तो, उस बगुलाभगतको तुम मन-ही-मन प्यार करती हो या नहीं ?"

पाँव-तले दबी नागिनकी तरह एक क्षणमें उग्र रूप धारण करके, झूठी स्पर्धासे पतिको छेदती हुई, गौरी रुँधे हुए कंठसे फुंकारती हुई बोल उठी—"हाँ, करती हूं। तुम्हें जो कुछ करना हो सो कर लो !"

पारस उसी वक्त घरमें ताला लगाकर, स्त्रीको तालेमें बन्द करके, अदालत चला गया।

असह्य रोषमें आकर गौरीने किसी तरह दरवाजा खोल लिया, और उसी वक्त वह घरसे बाहर निकल गई।

परमानन्द अपनी एकान्त कोठरीमें बैठे शास्त्र पढ़ रहे थे। वहाँ और कोई भी न था। सहसा अमेघवाहिनी विद्युल्लताकी तरह गौरी ब्रह्मचारीके शास्त्राध्ययनके बीच आकर टूट पड़ी।

गुरुने कहा—"यह क्या !"

शिष्याने कहा—"गुरुदेव, इस अपमान-भरे संसारसे उद्धार करके मुझे और-कहीं ले चलो। तुम्हारी सेवामें मैं अपना जीवन न्योछावर करना चाहती हूं।"

परमानन्दने बहुत डाट-फटकारकर गौरीको घर वापस कर दिया। किन्तु, हाय गुरुदेव, उस दिनका तुम्हारा वह अकस्मात टूटा हुआ अध्ययन-सूत्र क्या फिर पहले-जैसा जुड़ सका !

पारसने घर आकर दरवाजा खुला पाया ! स्त्रीसे पूछा—"यहाँ कौन आया था ?"

स्त्रीने कहा—"कोई नहीं आया, मैं गुरुदेवके घर गई थी।"

पारसका चेहरा सफेद-फक पड़ गया ; और दूसरे ही क्षण लाल-सुर्ख होकर बोला—"क्यों गई थी ?"

गौरीने कहा—"मेरी तबीयत !"

उस दिनसे घरपर पहरा बिठाकर स्त्रीको कोठरीमें बन्द करके पारसने ऐसा उपद्रव शुरू कर दिया कि सारे शहरमें बदनामी हो गई।

और इन-सब गन्दी बदमानी और बेइज्जतीकी खबर पाकर परमानन्दका हरि-भजन बिलकुल ही जाता रहा। इस शहरको छोड़कर वे अन्यत्र कहीं जानेकी सोचने लगे ; किन्तु बेचारी गौरीको इस दशामें छोड़कर उनसे और-कहीं जाते नहीं बना। संन्यासीके इन दिन-रातोंका इतिहास अन्तर्यामीके सिवा और कोई नहीं जान सका।

अन्तमें, उस अवरोधकी अवस्थामें ही गौरीको एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—"वत्से, मैंने काफी विचार किया है। इसके पहले अनेक साध्वी साधक रमणियोंने कृष्ण-प्रेममें घर-द्वार छोड़ा है। यदि संसारके अत्याचारोंसे तुम्हारा चित्त हरिके चरण-कमलोंसे विक्षिप्त हो गया हो, तो मुझे खबर देना। भगवानकी सहायतासे उनकी सेविकाका उद्धार करके उसे प्रभुके अभय

पदारविन्दमें न्योछावर करनेका प्रयास करूंगा। फाल्गुण शुक्ला त्रयोदशी बुधवारको, दिनके दो बजे, चाहो तो अपने तालाबके किनारे मुझसे भेंट कर सकती हो।"

गौरीने चिट्ठी बालोंमें बाँधकर जूड़ेमें खोंस ली। तेरसके दिन दोपहरको नहानेके पहले बाल खोलने लगी तो देखा कि चिट्ठी नदारद! सहसा सन्देह हुआ, शायद चिट्ठी सोतेमें किसी वक्त निकलकर बिस्तरपर गिर गई होगी। पति उस चिट्ठीको पढ़कर भीतर-ही-भीतर जल-भुनकर खाक हुए जा रहे होंगे, यह सोचकर गौरी मन-ही-मन जरा खुश हुई; किन्तु साथ ही उसका शिरोभूषण पत्र पाखंडीके हाथ पड़कर लांछित हो रहा होगा, यह बात भी उसे सह्य नहीं हुई। वह तेजीसे पतिके कमरेमें पहुंची।

देखा, पति जमीनपर पड़ा-हुआ बुरी तरह तड़प रहा है! उसके मुंहसे झाग निकल रहा है, और आँखोंकी पुतलियाँ ऊपर चढ़ गई हैं। दाहने हाथकी मुट्ठीमेंसे चिट्ठी निकालकर गौरीने जल्दीसे डाक्टर बुलवाया।

डाक्टरने आकर कहा—"ऐपोप्लेक्सी, मिरगी है!"

रोगी तब मर चुका था।

उस दिन पारसको किसी जरूरी मामलेकी पैरवीके लिए बाहर जाना था। और संन्यासीका यहाँ तक पतन हुआ था कि वह समाचार लेकर गौरीसे मिलनेके लिए तैयार हो रहे थे!

हाल-ही-हुई विधवा गौरीने खिड़कीसे देखा कि गुरुदेव पिछवाड़ेके तालाबके किनारे चोरकी तरह छिपे खड़े हैं। सहसा उसपर बिजली-सी टूट पड़ी, उसने आँखें नीची कर लीं। उसके

गुरु कहाँसे कहाँ उतर आये हैं, सहसा एक ही क्षणमें उसका वीभत्स चित्र उसकी आँखोंके सामने नाचने लगा।

गुरुने पुकारा—"गौरी !"

गौरीने कहा—"आई, गुरुदेव !"

मरनेकी खबर पाकर, पारसके मित्र वगैरह जब घरके भीतर पहुंचे, तब देखा कि गौरी भी पतिके बगलमें मरी पड़ी है ! उसने जहर खा लिया था।

आधुकिक कालमें, इस आश्चर्यजनक सहमरणके दृष्टान्तने सतीके माहात्म्यसे सबको दंग कर दिया।

---

# उलट-फेर

विपिनकिशोर अमीर-घरमें पैदा हुआ था; इसलिए जितना वह खर्च करना जानता था उतना कमाना उसने नहीं सीखा था। लिहाजा जिस घरमें उसका जन्म हुआ उस घरमें वह ज्यादा दिन नहीं टिक सका।

विपिनकिशोर सुन्दर सुकुमारसूर्ति तरुण युवक है; गाने बजानेमें सिद्धहस्त और काम-काजमें बिलकुल अपटु, दुनियादारीके काममें अनावश्यक और जीवनयात्राके लिए जगन्नाथके रथकी तरह अचल। कहनेका मतलब यह कि जिस विपुल आयोजनसे वह चल सकता है वैसा आयोजन फिलहाल उसके हाथसे फिसल चुका है।

सौभाग्यसे राजा चित्तरंजन, स्टेट-आफ-वार्ड्ससे अपनी सम्पत्ति वापस पाकर, शौकिया नाटक-मंडलीके फंदेमें पड़नेकी कोशिश कर रहे थे ; इतनेमें विपिनकिशोरके सुन्दर चेहरे और गानेपर मुग्ध होकर विपिनको उन्होंने अपने अनुचरोंमें दाखिल कर लिया।

राजा साहब बी० ए० पास हैं। उनमें किसी तरहकी उच्छृङ्खलता नहीं थी। बड़े आदमीके लड़के होनेपर भी वे नियमित समयमें, यहाँ तक कि निर्दिष्ट स्थानमें सोते और खाते-पीते थे। किन्तु विपिनने सहसा उन्हें नशेकी तरह पकड़ लिया। उसका गाना सुनते-सुनते और उसके लिखे हुए गीतिनाट्यकी आलोचना करते-करते वे ऐसे भूल जाते कि रसोई ठंडी हो जाती और रात बीतती रहती।

दीवानजी कहने लगे, उनके संयतस्वभाव मालिकके चरित्रदोषमें बस एक विपिनके प्रति आसक्ति-भर है, और कुछ नहीं।

रानी वसन्तकुमारीने पतिको डाटकर कहा—"न-जाने कहाँसे एक बेहूदा बन्दर पकड़ लाये हो, उसके पीछे शरीर तककी रेढ़ मार दी। यहाँसे उसका काला मुंह हो तो मुझे चैन आवे।"

राजा अपनी युवती स्त्रीकी इस ईर्ष्यापर मन-ही-मन खुश होते, हंसते ; सोचते, औरतें जिससे प्यार करती हैं, सिर्फ उसीको जानती हैं। दुनियामें आदरके पात्र और भी बहुत-से गुणीजन हैं, स्त्रियोंके शास्त्रमें यह नहीं लिखा। जिस आदमीने उसके कानमें विवाहका मंत्र पढ़ा, सब गुण उसीमें हैं, और सारी इज्जत उसीके लिए है! पति खानेमें आध-घंटेकी देर कर दें तो सहन

नहीं ; और, पति अपने आश्रितको निकाल बाहर करें तो उसकी क्या दशा होगी, दाने-दानेके लिए वह भटकता फिरेगा, इसकी उन्हें जरा भी फिकर नहीं ! स्त्रियोंका यह विवेकहीन पक्षपात दूषणीय हो सकता है, किन्तु चित्तरंजनको वह ज्यादा बुरा नहीं मालूम हुआ। वे जब-है-तब विपिनकी बहुत ज्यादा तारीफ कर करके स्त्रीको चिढ़ाते और खुश होते रहते।

यह राजकीय खेल बेचारे विपिनके लिए आरामदे नहीं हुआ। अन्तःपुरकी विमुखताकी वजहसे उसके खाने-पीनेकी व्यवस्थामें कदम-कदमपर काँटे चुभने लगे। अमीरोंके यहाँ, खासकर भद्र आश्रितजनोंके प्रति नौकर-चाकरोंका बरताव अच्छा नहीं होता ; उसपर रानीकी तरफसे नाराजीका आभास पाकर सब भीतर ही भीतर विपिनकी काफी उपेक्षा करने लगे।

रानीने एक दिन नौकरको डाटकर कहा—"तू तो अब कभी दिखाई ही नहीं देता ; दिन-भर किया क्या करता है ?"

पूसाने कहा—"राजा साहबके हुकमसे रात-दिन विपिन बाबूकी टहल-चाकरीमें लगा रहता हूं।"

रानीने कहा—"अच्छा, विपिन बाबू तो नवाब बन गये मालूम होता है !"

दूसरे दिनसे पूसा विपिनकी जूठी थाली ज्यों-की-त्यों पड़ी रहने देता, और अकसर उसकी खाने-पीनेकी चीज अनढकी छोड़ देता। अनभ्यस्त हाथोंसे विपिन अपनी जूठी थाली आप माँजने लगा और किसी-किसी दिन उपवास भी करने लगा ; मगर इस बारेमें कोई शिकायत उसने राजाके कानों तक नहीं पहुंचाई।

नौकर-चाकरोंके साथ झगड़ा करके उसने अपनेको छोटा नहीं बनाया। इस तरह विपिनके भाग्यमें हवेलीके बाहरी हिस्सेमें आदर बढ़ने लगा, लेकिन जनानखानेमें अनादरकी सीमा न रही।

इधर रिहर्सलके बाद 'सुभद्रा-हरण' गीतिनाट्य बिलकुल तैयार था। महलके आँगनमें उसका अभिनय हुआ। राजा खुद बने श्रीकृष्ण, और विपिनने अर्जुनका अभिनय किया। अहा, अर्जुनका जैसा गला था वैसा ही रूप! दर्शकगण धन्य-धन्य करने लगे।

रातको राजाने आकर बसन्तकुमारीसे पूछा—"नाटक कैसा लगा?"

रानीने कहा—"विपिनने तो अर्जुनका अभिनय बहुत अच्छा किया! चेहरा भी खूब है बड़े-घरानेका-सा! और गलेकी मिठासका तो कहना ही क्या!"

राजाने कहा—"और मेरा चेहरा कुछ भी नहीं! और गला भी कड़ुआ लगा, क्यों?"

रानीने कहा—"तुम्हारी बात और है!" और फिर विपिनके अभिनयकी चर्चा छेड़ दी।

राजा खुद इससे कहीं ज्यादा और आवेगमयी भाषामें रानीके सामने विपिनकी तारीफ कर चुके हैं, किन्तु आज रानीके मुंहसे जरा-सी प्रशंसा सुनकर उन्हें ऐसा लगा कि विपिन जितना कर सकता है, नासमझ लोग उससे कहीं ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर उसकी तारीफ किया करते हैं! क्या तो उसका चेहरा है, और क्या गला! कुछ दिन पहले वे खुद उक्त नासमझोंकी श्रेणीमें थे, आज

अचानक किस वजहसे उनकी समझ इतनी बढ़ गई, कहना मुश्किल है।

दूसरे दिनसे विपिनके खाने-पीनेका बहुत अच्छा इन्तजाम हो गया।

बसन्तकुमारीने राजासे कहा—"विपिनको बाहर कचहरीमें गुमाश्तोंके साथ रखना उचित नहीं है; कुछ भी हो, है तो वह अमीर-घरका लड़का।"

राजाने संक्षेपमें बातको निगलते हुए कहा—"हूं!"

रानीने अनुरोध किया कि बच्चेके अन्नप्राशनके दिन फिर एक बार नाटक कराना चाहिए। राजाने उनकी बातपर कुछ ध्यान ही नहीं दिया।

एक दिन, धोती-दुपट्टा ठीकसे नहीं चुना गया तो राजाने पूसाको बहुत फटकारा; उसने कहा—"क्या करूं हुजूर, रानी साहिबाके हुकमसे विपिन बाबूकी सेवा-टहलमें सारा वक्त बीत जाता है।"

राजा बहुत नाराज हुए, बोले—"अच्छा, विपिन तो आजकल भारी नवाब हो गया है, अपना काम आप नहीं कर सकता!"

विपिनको पुनर्मूषिक होना पड़ा।

रानी राजाके पीछे पड़ गईं कि शामको बैठकखानेमें जहाँ वे गाना सुना करते हैं, वहाँ बगलके कमरेमें परदेका इन्तजाम कर दिया जाय,— वे भी गाना सुनेंगी, उन्हें विपिनका गाना बहुत अच्छा लगता है। राजाने दूसरे ही दिनसे पहलेकी तरह अत्यन्त

नियमित समयमें खाना-पीना और सोना शुरू कर दिया। गाना-बजाना अब नहीं होता।

दोपहरको राजा जमींदारीका काम देखा करते थे। एक दिन जरा-कुछ जल्दी ही अन्तःपुर पहुंच गये; देखा कि रानी कुछ पढ़ रही हैं। राजाने पूछा—"क्या पढ़ रही हो?"

रानी पहले तो कुछ सहम-सी गईं, फिर बोलीं—"विपिन बाबूकी गानोंकी एक कापी है, दो-एक गाने याद करनेके लिए मंगाई थी। अचानक तुम्हारा शौक तो मिट ही गया। अब तो गाना सुनना हो नहीं सकता।" इसके बहुत पहले ही रानीने जो उनके इस शौकको जड़से नष्ट करनेकी भरसक कोशिश की थी, उस बातकी आज उन्हें किसीने याद नहीं दिलाई।

दूसरे दिन राजाने विपिनको विदा कर दिया। कलसे उसकी क्या दशा होगी, इस विषयमें उन्होंने जरा भी विचार नहीं किया।

दुःख सिर्फ इस बातका ही नहीं है, सबसे बड़ा दुःख तो उसके यह बैठ गया कि वह राजासे अकृत्रिम अनुराग कर बैठा था; और वेतनकी अपेक्षा राजाका प्रेम ही उसके लिए बहुत ज्यादा कीमती हो गया था। आखिर किस कसूरपर अचानक इस तरह राजाने उसे अपने प्रेममेंसे, दूधमेंसे मक्खीकी तरह, निकालकर फेंक दिया, बहुत सोचने-विचारनेपर भी उसकी कुछ समझमें नहीं आया। अन्तमें उसने एक गहरी साँस ली; और अपने पुराने तम्बूरेपर गिलाफ चढ़ाकर बन्धुहीन इस विशाल संसारमें भटकने निकल पड़ा। जाते वक्त राजभृत्य पूसाको वह अपनी आखिरी पूंजी दो रुपया इनाममें दे गया।

# समाधान

झाँकड़कोटके जमींदार बाबू कृष्णगोपाल सिंह बड़े लड़केको अपनी जमींदारी और घर-गृहस्थीका भार सौंपकर काशी चले गये। उनकी प्रजा और चारों तरफके गरीब-दुःखी लोग उनके लिए हाहाकार करके रोने लगे। सभी यही करते दिखाई दिये कि उन जैसी उदारता दानशीलता और धर्मनिष्ठा कलियुगमें बिरलों-ही-में देखनेको मिलती है।

उनके पुत्र बिपिनबिहारी आजकलके सुशिक्षित ग्रेजुएट हैं। दाढ़ी रखते हैं, चश्मा लगाते हैं, किसीके साथ जल्दी मिलते-मिलाते नहीं। अत्यन्त सच्चरित्र हैं; यहाँ तक कि तम्बाकू भी नहीं पीते, ताश तक नहीं खेलते। बहुत ही भले-मानस जैसा चेहरा है; लेकिन आदमी बड़े कड़े हैं।

उनकी रिआया इस बातको बहुत ही जल्द समझ गई। बड़े मालिक-सा'बके जमानेमें बहुत-कुछ सहूलियत थी; लेकिन इनका तो ऐसा हाल है कि किसी भी बहानेसे एक दमड़ीकी भी माफीकी उम्मीद नहीं। ठीक वक्तपर लगानका रुपया जमा हो जाना चाहिए; दो-एक दिनकी मोहलत तो दूर रही, कोई सुबह-शाम भी नहीं कर सकता।

बिपिनबिहारीने काम सम्हालते ही देखा कि उनके पिता बहुतसे ब्राह्मणोंको बिना-लगानकी जमीन दे गये हैं, और कम लगान देनेवालोंकी तो इतनी ज्यादा संख्या है कि जिसकी हद नहीं। असलमें, कृष्णगोपाल बाबूका ऐसा ही सरल स्वभाव

था कि कोई उनसे कुछ प्रार्थना करता तो उनसे उसकी पूर्ति किये बिना रहा नहीं जाता था। यह उनमें एक कमजोरी थी।

विपिनविहारीने कहा—"यह हरगिज नहीं हो सकता। आधी जमींदारी मैं इस तरह माफीमें नहीं बाँट सकता।" और उनके मनमें निम्न-लिखित युक्तियोंका उदय हुआ।

पहली बात तो यह कि जो अकर्मण्य आलसी लोग घर-बैठे इन जमीनोंका हक भोगकर मोटे हो रहे हैं वे बिलकुल वाहियात आदमी हैं और दयाके काबिल ही नहीं।

दूसरे, तबके जमानेमें और अबके जमानेमें बहुत भारी अन्तर हो गया है, पहलेकी अपेक्षा अब खर्च बहुत बढ़ गया है। चीजें मँहगी हो गई हैं और जरूरतें भी बहुत बढ़ गई हैं। अब किसी भी शरीफ खानदानको अपनी इज्जत-आबरू बचाते हुए चलनेमें पहलेसे चौगुना खर्च करना पड़ता है। लिहाजा उनके पिता जिस तरह निश्चिन्त होकर दोनों हाथोंसे लुटा गये हैं, अब वैसा करनेसे काम नहीं चल सकता; बल्कि उन-सबको बटोरकर फिरसे इकट्ठा करना ही उनका कर्तव्य है।

और, उनकी कर्तव्यबुद्धि जैसा कहती गई वैसा वे करते गये। उन्होंने अपना एक 'प्रिन्सिपल' बना लिया और उसके अनुसार चलने लगे।

घरसे जो-कुछ निकल गया था वह फिर धीरे-धीरे घरमें वापस आने लगा। पिताके दिये हुए दानमें से उन्होंने बहुत ही कम बहाल रखा; और जो-कुछ रखा उसके लिए भी ऐसा उपाय कर दिया कि वह कायमी न समझा जाये।

कृष्णगोपाल काशीमें रहते हुए चिट्ठी-पत्रियोंसे प्रजाका रोना सुनने लगे। यहाँ तक कि कोई-कोई उनके पास जाकर भी रोने लगा। पिताने पुत्रको लिखा कि यह काम उसका निन्दनीय है।

विपिनविहारीने जवाबमें लिखा, पहले जैसा दान किया जाता था वैसी आमदनी भी नाना प्रकारसे हुआ करती थी। तब जमींदार और रिआया दोनों तरफसे देन-लेन चला करता था। और अब, नये-नये कानून बन जानेसे मुनासिब लगानके सिवा और-सब तरहकी आमदनी बिलकुल बन्द हो गई है। अब तो सिर्फ एक लगानके सिवा जमींदारोंके और-और सब महत्त्वके अधिकार ही जाते रहे हैं। लिहाजा, आज अगर मैं अपनी हककी लगान वसूल करनेमें भी कड़ाई न रखूं तो फिर बचेगा क्या? अब रिआया भी हकसे एक कौड़ी ज्यादा नहीं देती, और मैं भी अपने हकमेंसे एक पाई नहीं छोड़ सकता। अब हमारा और उनका सिर्फ लेन-देनका सम्बन्ध है। दान-खैरात करनेसे दो दिनमें सब सफाया हो जायगा, जमींदारी और वंशगौरवकी रक्षा हरगिज नहीं हो सकती।

कृष्णगोपाल बाबू समयके इस अकस्मात्-परिवर्तनसे अत्यन्त चिन्तित हो उठे; और सोचने लगे, आजकलके लड़के आजकलके जमानेके माफिक ही चल रहे हैं; मेरे उस जमानेकी बात अब नहीं चल सकती। मैं दूर रहकर हस्तक्षेप करूँगा तो वे कहेंगे, 'तुम अपनी जायदाद वापस ले लो, हम इसकी रक्षा नहीं कर सकते।' मुझे क्या जरूरत, ये आखिरके दिन किसी तरह भगवानका नाम लेकर बिता दूं, यही काफी है।

२

इसी तरह काम चलने लगा। काफी मामले-मुकदमे दंगा फसाद कर-कराके विपिनविहारीने एक तरहसे सब-कुछ अपने मन-माफिक कर लिया, यानी जमींदारीका काम सुचारुरूपसे चलने लगा।

अधिकांश रिआयाने अधीनता स्वीकार कर ली, सिर्फ मिर्जा बीबीका बेटा आसफुद्दीन किसी भी तरह काबूमें नहीं आया।

और विपिनविहारीका क्रोध उसीपर सबसे ज्यादा था। ब्राह्मणोंकी ब्रह्मोत्तर-सम्पत्तिके कुछ मानी भी समझमें आते हैं, किन्तु इस मुसल्मानकी औलादको क्या समझकर माफीकी जमीन दी गई, समझना मुश्किल है। एक मामूली मुसलमान बेवाका लड़का गाँवके मुफ्ती स्कूलमें पढ़कर ऐसा उद्दण्ड हो गया है कि अपने आगे किसीको कोई चीज ही नहीं समझता!

विपिनको पुराने कर्मचारियोंसे माल्रूम हुआ कि बड़े-मालिक सा'बके जमानेसे ही इनलोगोंको काफी रिआयत मिलती आई है। क्यों मिलती आई है, सो वे नहीं बतला सके। शायद अनाथ विधवाके रोने-धोनेपर मालिक सा'बको दया आ गई होगी।

मगर विपिनको पिताकी यह दया सबसे बढ़कर नाजायज माल्रूम हुई। खासकर इसलिए और-भी कि इनलोगोंकी पहलेकी अनाथ-अवस्था उन्होंने देखी नहीं; और अब उनकी अच्छी हालत और हदसे ज्यादा दम्भ देखकर विपिनको ऐसा लगने लगा कि जरूर इनलोगोंने उनके सरलचित्त दयालु पिताको ठगकर उनकी जायदादका एक हिस्सा हड़प लिया है।

आसफुद्दीन भी उद्दण्डप्रकृतिका नौजवान है। उसने कहा—"जान देना कबूल है, पर चप्पा-भर जमीन देना कबूल नहीं।"

दोनों तरफसे खूब जोरोंकी लड़ाई छिड़ गई।

आसफुद्दीनकी बेवा माने लड़केको बार-बार समझाया कि 'जमींदारके साथ कजिया करनेसे कोई फायदा नहीं, अब तक बराबर जिनकी बदौलत अपनी परवरिश होती आई है उन्हींकी मेहरबानीपर सब छोड़ देना चाहिए। जमींदारके कहे-मुताबिक कुछ जमीन छोड़ देना ही ठीक है।'

आसफने कहा—"अम्मी-जान, तुम इस मामलेमें कुछ नहीं समझतीं।"

आसफ एक-एक करके सभी मामलोंमें हारने लगा। लेकिन ज्यों-ज्यों हारने लगा त्यों-त्यों उसकी जिद बढ़ती ही गई। अपने सर्वस्वके लिए उसने सर्वस्वकी बाजी लगानेकी ठान ली।

एक दिन शामको मिर्जा बीबी नजरके लिए अपने बगीचेमेंसे कुछ सब्जी वगैरह लेकर चुपकेसे जमींदारके घर पहुंची। बुढ़ियाने मानो अपनी सकरुण मातृदृष्टिसे विपिनके सारे बदनपर स्नेहका हाथ फेरते हुए कहा—"तुम मेरे बाप हो, बेटा हो, सब-कुछ हो, अल्लाह तुम्हारा भला करेंगे। बेटा, आसफको तुम बरबाद न करो, यह धरमका काम नहीं। उसे मैं तुम्हारे ही हाथ सौंपती हूं। उसे तुम अपना नाकाबिल निकम्मा छोटा भाई समझकर माफ कर दो, उसने तुम्हारी बेशुमार दौलतमेंसे जरा-सी जमीन ले ली, इसके लिए तुम अपनी तबीयतमें जरा भी मलाल न लाओ बेटा!"

ज्यादा उमरकी स्वाभाविक प्रगल्भतावश बुढ़िया उनके साथ

नाता जोड़ने आई है देखकर विपिन और भी खीज उठे; बोले—"तुम औरत हो, इन मामलोंमें कुछ नहीं समझतीं। अगर कुछ अर्ज करना हो तो अपने लड़केको भेजो जाकर।"

मिर्जा बीबीको अपने लड़के और पराये लड़के दोनोंसे ही सुनना पड़ा, वह इस मामलेमें कुछ नहीं समझती।" अल्लाहका नाम लेकर वह आँखें पोंछती हुई घर लौट गई।

३

मामले फौजदारीसे दीवानी, दीवानीसे जिला-अदालत और जिला-अदालतसे हाईकोर्ट तक चलते रहे। डेढ़ साल इसी तरह बीत गया। आसफुद्दीन जब कि कर्जमें गले तक डूब चुका था तब अपीलमें उसकी आंशिक विजय हुई।

लेकिन जंगलसे शेरके पंजेसे निकल भागा तो पानीमें मगरके मुँहमें जा फँसा। महाजनने मौका देखकर डिक्री जारी कर दी। आसफुद्दीनकी सारी जायदाद नीलामपर चढ़नेकी तारीख तय हो गई।

उस दिन सोमवार था, हाटका दिन। छोटी-सी नदी है, उसके किनारे हाट लगती है। वर्षाके दिनोंमें नदी खूब भर रही थी। क्या नाव और क्या किनारा, सब जगह खरीद-बिक्री हो रही है, शोरगुलका अन्त नहीं। चारों तरफ कटहर और मछलियाँ ही मछलियाँ नजर आ रही हैं। आसमानमें बादल उमड़ रहे हैं; बहुतसे दूकानदारोंने बारिशके डरसे बाँस गाड़-गाड़कर उनपर कपड़ा तान दिया है।

आसफ भी हाटमें सौदा लेने आया है; लेकिन उसके हाथमें

पैसा एक भी नहीं ; और आजकल उसे उधार भी कोई नहीं देता। उसके हाथमें एक कटारी और एक पीतलकी थाली है; गिरवी रखकर कुछ सौदा लेनेकी मनसा है।

विपिन बाबू शामके लगभग हवा खाने निकले हैं; साथमें दो-तीन जने लठैत हैं, अंग-रक्षाके लिए। शोरगुल ज्यादा सुनकर उनकी तबीयतमें आई कि चलो हाट देख आयें।

हाटमें घुसकर वे कुतूहलवश द्वारका नाईसे उसकी फजूलखर्ची के बारेमें पूछताछ कर रहे थे कि इतनेमें यकायक आसफ कटारी उठाकर शेरकी तरह गरजता हुआ उनकी ओर झपटा। हाटके लोगोंने बीचमें ही उसे पकड़ लिया ; और हाथसे कटारी छीनकर उसे पुलिसके हवाले कर दिया। हाटकी खरीद-बिक्री फिर ज्यों-की-त्यों चलने लगी।

विपिन बाबू इस घटनासे मन-ही-मन खुश न हुए हों, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। हम जिसका शिकार करना चाहते हैं वह अगर हमपर हमला करने झपटे, तो उसकी यह गुस्ताखी और बेअदबी हरगिज नहीं सही जा सकती। कुछ भी हो, विपिनके खयालसे, 'हरामजादा जैसा बदमाश है वैसी ही अब उसे सजा भी मिल जायगी।'

विपिनके घरकी औरतोंके, आजकी घटनाका हाल सुनकर, रोंगटे खड़े हो गये। सबने कहा, 'हाय भगवान, हरामजादा है कैसा बदमाश, गुण्डा-डाकू कहींका !' और यह जानकर कि अब उसे माकूल सजा मिलेगी, उन्हें सन्तोष भी हुआ।

इधर उस रातको विधवाका अन्नहीन पुत्रहीन घर श्मशानसे

भी भयङ्कर और अन्धकारमय हो गया। और-सब लोग इस बातको बिलकुल ही भूल गये, सबने खाया-पीया और सो गये। किन्तु उस बुढ़ियाके आगे दुनियाकी और-सारी बातोंसे बढ़कर यही एक घटना पहाड़ होकर दिखाई देने लगी। उसपर बेबसी यह कि उसके साथ जूझनेके लिए अँधेरी कोठरीमें पड़ी कुछ पुरानी हड्डियों और हताशासे भयभीत हृदयके सिवा सारी दुनियामें और-कोई रहा ही नहीं।

## ४

तीन-चार दिन यों ही बीत गये। कल डिप्टी-मजिस्ट्रेटके इजलासमें आसफकी पेशी होगी। विपिनको गवाहीके लिए जाना है। इसके पहले जमींदारको आज तक कभी भी गवाहके कठघरेमें खड़ा नहीं होना पड़ा; किन्तु आज विपिनको उसमें भी कोई आपत्ति नहीं।

दूसरे दिन यथासमय अचकन और पगड़ी पहनकर, घड़ी घड़ीकी चेन लटकाकर, पालकीमें बैठकर विपिन बाबू कचहरी पहुँच गये। डिप्टी-मजिस्ट्रेटने उन्हें सम्मानके साथ, अपने बगलमें कुरसी डलवाकर, बिठाया। इजलासमें तिल रखनेको जगह नहीं। ऐसी धूम इस अदालतमें बहुत दिनों बाद हुई है।

कुछ ही देरमें मामला पेश होने ही वाला था कि इतनेमें विपिनका एक चपरासी आकर अपने मालिकके कानमें कुछ कह गया। मालिक क्षण-भरके लिए सन्न रह गये; और तुरत ही अपनेको सम्हालकर 'अभी आया' कहकर बाहर चले गये।

विपिनने बाहर जाकर देखा कि कचहरीके अहातेमें एक

बड़के पेड़के नीचे उनके वृद्ध पिता खड़े हैं। दूरसे नंगे-पाँव, नामावली ओढ़े, हाथमें माला लिये कृष्णगोपाल बाबूका स्निग्ध ज्योतिर्मय कृश शरीर ऐसा चमक रहा था जैसे स्वर्गसे कोई नक्षत्र उतर आया हो। ललाटसे मानो शान्त करुणा-सी विकीर्ण हो रही थी।

विपिनने अचकन पाजामा वगैरह चुस्त पोशाक पहने हुए बड़ी मुश्किलसे उनके पाँव छुए। माथेकी पगड़ी नाक तक उतर आई, घड़ी जेबमेंसे निकल पड़ी; सबको जल्दी-जल्दी सम्हालकर पितासे उन्होंने पासवाले वकीलोंके कमरेमें चलनेके लिए अनुरोध किया।

कृष्णगोपालने कहा—"नहीं। मुझे जो कुछ कहना है, यहीं कहे देता हूं।"

विपिनके चपरासियोंने आसपासके कुतूहली लोगोंको ढकेलकर दूर हटा दिया।

कृष्णगोपालने कहा—"ऐसा करना जिससे आसफ छूट जाय; और उसकी जो जायदाद तुमने छीन ली है उसे वापस कर देना।"

विपिनने आश्चर्यके साथ कहा—"इसीलिए आप काशीसे यहाँ तक दौड़े आये हैं? उन लोगोंपर आपकी इतनी ज्यादा मेहरबानी क्यों है?"

कृष्णगोपालने कहा—"उस बातको सुनकर तुम क्या करोगे?"

विपिनने फिर भी पूछा—"अयोग्यताका विचार करके मैंने बहुतोंका दान वापस ले लिया है, उनमें बहुत-से ब्राह्मण भी हैं; आपने उन मामलोंमें तो कोई हस्तक्षेप नहीं किया; फिर आज इस मुसलमान बदमाशके लिए आपने इतनी तकलीफ क्यों उठाई?

मामला इतना आगे बढ़ गया है कि अब अगर आसफ छूट जाय और उसकी जायदाद वापस दे दी जाय तो लोग क्या कहेंगे ?"

कृष्णगोपाल बाबू कुछ देर तक चुप रहे। अन्तमें काँपती हुई उंगलियोंसे बड़ी तेजीसे माला फेरते हुए, काँपते हुए गलेसे बोल उठे—"लोगोंके आगे तुम्हें अगर कैफियत देनी ही पड़े, तो कह देना, आसफुद्दीन तुम्हारा भाई है, मेरा लड़का है।"

विपिन चौंक पड़े, बोले—"मुसलमान—"

कृष्णगोपालने कहा—"हाँ !"

विपिन बहुत देर तक स्तब्ध खड़े रहे, फिर बोले—"और बात पीछे होगी, अभी आप घर चलिये।"

कृष्णगोपालने कहा—"नहीं। मैं अब घर नहीं जाऊँगा। यहींसे सीधा काशी चला जाऊँगा। अब जो तुम्हारे धर्ममें उचित जान पड़े सो करना।" इतना कहकर पुत्रको आशीर्वाद दिया, और काँपते हुए हाथसे नामावलीका छोर उठाकर आँसू पोंछते हुए वहाँसे चल दिये।

विपिन किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर जहाँके तहाँ खड़े रहे; कुछ सोच ही न सके कि क्या कहें, क्या करें। पर इतनी बात उनके मनमें जरूर पैदा हुई कि उस जमानेकी धर्मनिष्ठाका क्या यही स्वरूप है ? साथ ही शिक्षा और चरित्रमें अपनेको अपने पितासे वे कहीं श्रेष्ठ समझने लगे। और अन्तमें इस नतीजेपर पहुँचे कि जीवनका कोई उद्देश्य या कोई निश्चित सिद्धान्त न होनेसे यही हाल होता है।

विपिन जब अदालतकी तरफ जाने लगे तो रास्तेमें देखा कि

दुबला-पतला काला-कलूटा आसफ सिपाहियोंके पहरेमें कैदी-सा खड़ा है; उसके ओठ सूख गये हैं, आँखोंमेंसे चिनगारियाँ-सी निकल रही हैं, हाथोंमें हथकड़ियाँ पड़ी हैं और कमरमें रस्सी। और वह विपिनका भाई है !

डिप्टी मजिस्ट्रेटके साथ विपिनकी मित्रता थी। मुकदमा दबा दिया गया। और आसफुद्दीन पहलेकी तरह रहने लगा। पर इसका कारण न तो आसफ ही समझ सका, और न गाँवका और-कोई ही। सब आश्चर्य करने लगे।

पर यह बात फैलनेमें जरा भी देर न लगी कि मामलेकी पेशीके दिन बाबू कृष्णगोपाल सिंह खुद काशीसे अदालत तक दौड़े आये थे। लोग तरह-तरहकी कानाफूसी करने लगे।

सूक्ष्मबुद्धि वकीलोंने तुरत ही सब-कुछ समझ लिया। रामरतन वकीलको कृष्णगोपालने अपने खर्चसे पढ़ाकर आदमी बनाया था; उन्हें शुरूसे ही सन्देह था; अब उन्होंने पूरी तौरसे समझ लिया कि 'अच्छी तरह छानबीन की जाय तो दुनियामें सभी साधुओंका यही गुल खिलेगा। कोई कितनी ही माला क्यों न जपे, अन्तमें सब हमारे ही भाई-बंद निकलेंगे। फर्क सिर्फ इतना ही है कि साधु लोग कपटी होते हैं और असाधु निष्कपट।' कुछ भी हो, कृष्णगोपालका जगत्प्रसिद्ध दान-ध्यान और दया-धर्म सब-कुछ कपट था, इस बातका फैसला हो जानेसे रामरतनकी बहुत-दिनोंकी जटिल समस्याका समाधान हो गया; और मालूम नहीं किस युक्तिके अनुसार वे अपने कँधेसे कृतज्ञताका भारी बोझ उतारकर हलके हो गये; इससे उन्हें बड़ा-भारी आराम मिला।

# तपोवन

आधुनिक सभ्यता-लक्ष्मी जिस कमलपर विराज रही हैं वह ईंट और लकड़ीसे बना है ; वह है नगर या शहर। उन्नतिका सूर्य जैसे-जैसे मध्य-आकाशमें आ रहा है वैसे-वैसे शहर-रूपी कमलके दल खिल-खिलकर क्रमशः चारों तरफ व्याप्त हुए जा रहे हैं। बेचारी वसुन्धरा इस बढ़ते-हुए सुर्खी-चूनेके गारेको रोकनेमें असमर्थ हो रही है।

नगरमें ही मनुष्य विद्या सीख रहा है, विद्याका प्रयोग कर रहा है, धन कमा रहा है, अपनेको हर तरफसे शक्ति और सम्पदासे परिपूर्ण करनेकी कोशिश कर रहा है। इस सभ्यतामें सबसे बढ़कर जो-कुछ श्रेष्ठ पदार्थ है वह है नगरकी सामग्री।

वस्तुतः, इसके सिवा और किसी तरहकी कल्पना करना कठिन है। जहाँ अनेक मनुष्योंका सम्मिलन है, वहाँ विचित्र बुद्धियोंके संघातसे चित्त जाग्रत हो उठता है ; और चारों तरफसे धक्के खा-खाकर प्रत्येककी शक्ति गतिको प्राप्त होती है। इस तरह चित्त-समुद्रका मन्थन होते रहनेसे मनुष्यका निगूढ़ सार पदार्थ स्वतः ऊपर आकर बहने लगता है।

उसके बाद जब मनुष्यकी शक्ति जाग उठती है, तो वह स्वभावतः ऐसा क्षेत्र चाहने लगती है जहाँ वह अपना सफल प्रयोग कर सके। वह क्षेत्र कहाँ है? जहाँ अनेक मनुष्योंके अनेक प्रकारके उद्यम तरह-तरहके सृष्टि-कार्यमें सर्वदा ही सचेष्ट हो रहे हैं वहीं है वह क्षेत्र ; और वह है नगर।

शुरू-शुरूमें मनुष्य जब, खूब भीड़ इकट्ठी करके, किसी जगह शहरकी रचना कर बैठता है, तब उसकी वह रचना सभ्यताके आकर्षणसे नहीं होती। अधिकांश क्षेत्रोंमें शत्रुओंके आक्रमणोंसे आत्म-रक्षा करनेके लिए ही मनुष्य किसी सुरक्षित और सुविधा-जनक स्थानमें एकत्र होकर रहनेकी आवश्यकता अनुभव करता है, परन्तु किसी भी कारणसे हो, एक जगह बहुतोंके इकट्ठे होनेका कोई आयोजन होनेपर वहाँ तरह-तरहके आदमियोंकी आवश्यकता होती है; और वहींपर सभ्यताकी अभिव्यक्ति स्वतः होने लगती है।

परन्तु भारतवर्षमें यह एक आश्चर्यजनक बात देखी गई कि यहाँकी सभ्यताका मूल प्रस्रवण (सोता) नगरमें नहीं, वनमें है। भारतवर्षका प्रथमतम आश्चर्यकारी विकास जहाँ दिखाई देता है वहाँ मनुष्यके साथ मनुष्य बहुत ही नजदीक सटकर बिलकुल गुट बाँधकर नहीं बैठे। वहाँ वृक्ष-लता और नदी-सरोवरोंको मनुष्यके साथ मिलकर रहनेका काफी अवकाश मिला था। वहाँ मनुष्य भी था और निर्जनता भी थी; धक्कमधक्का नहीं था। फिर भी उस निर्जनता या सुनसानने भारतवर्षके चित्तको जड़-सा नहीं बना दिया, बल्कि उसकी चेतनाको और भी उज्ज्वल कर दिया था। ऐसी घटना संसारमें और-भी कहीं हुई है, ऐसा तो नहीं मालूम होता।

हमलोगोंने यही देखा है कि जो मनुष्य परिस्थितिवश जंगलमें घिर जाते हैं, वे क्रमशः जंगली हो जाते हैं। या तो वे व्याघ्र-से हिंसक हो जाते हैं, या फिर हरिणके समान भोले बने रहते हैं। परन्तु प्राचीन भारतवर्षमें, हम देखते हैं, वनकी निर्जनताने

मनुष्यकी बुद्धिको पराजित नहीं किया, बल्कि उसे ऐसी एक शक्ति दी थी कि उस वनवाससे निकली हुई सभ्यताकी धाराने समस्त भारतवर्षको अभिषिक्त कर दिया; और आज तक उसका प्रवाह बन्द नहीं हुआ।

इस तरह वनवासियोंकी साधनासे भारतवर्षने सभ्यताकी जो 'प्रैति' ( energy=संचालन-शक्ति ) प्राप्त की थी, शायद वह बाहरके संघातसे नहीं हुई, नाना प्रयोजनोंकी होड़से नहीं जागी। इसलिए वह शक्ति प्रधानतः बहिरभिमुखी नहीं हुई। उसने ध्यानके द्वारा विश्वकी गम्भीरतामें प्रवेश किया है, निखिलके साथ आत्माका सम्बन्ध स्थापित किया है। यही कारण है कि भारतवर्षने मुख्यतः ऐश्वर्यके उपकरणोंके द्वारा ही अपनी सभ्यताका परिचय नहीं दिया। इस सभ्यताके जो कर्णधार थे वे निर्जनवासी थे, और कमसे कम आवश्यकताएँ रखनेवाले तपस्वी थे।

और समुद्र-तटने जिस जातिका पालन-पोषण किया है उसे वाणिज्य-सम्पदा दी है। मरुभूमिने जिन्हें थोड़ा-सा दूध पिलाकर भूखा रख छोड़ा है वे दिग्विजयी हुए हैं। इसी प्रकार एक-एक विशेष सुयोगसे मनुष्यकी शक्तिने एक-एक विशेष मार्ग प्राप्त किया है।

समतल आर्यावर्तकी वन-भूमिने भी भारतवर्षको एक विशेष सुयोग दिया था। भारतवर्षकी बुद्धिको उसने संसारके अन्तरतम रहस्य-लोककी खोजके लिए प्रेरित किया था। उस महासमुद्र-तटके अनेक सुदूर द्वीप-द्वीपान्तरोंसे वह जिस सम्पदाको आहरण कर लाई थी, समस्त मनुष्य-जातिको आये-दिन उसकी आवश्यकता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। जिस औषधि-वनस्पतिके भीतर

प्रकृतिके प्राणोंकी क्रिया दिन-रात और ऋतु-ऋतुमें प्रत्यक्ष हो उठती है, और प्राणोंकी लीला तरह-तरहकी विचित्र भंगियों ध्वनियों और रूप-वैचित्र्यमें निरन्तर नये-नये भावोंमें प्रकाशित होती रहती है, उसके बीचमें ध्यान-परायण चित्त लेकर जो रहा करते थे, वे अपने चारों तरफ एक आनन्दमय रहस्यका अनुभव किया करते थे। इसीलिए वे इतने सहजरूपमें कह सके थे, "यदिदं किंच सर्वं प्राण एजति निःसृतं", अर्थात् यह जो-कुछ है, सभी-कुछ परमप्राणसे निकलकर प्राणोंमें ही कम्पित हो रहा है। वे स्वरचित ईंट-लकड़ी-लोहेके कठिन पिंजड़ेमें नहीं रहते थे; जहाँ वे रहते थे वहाँ विश्वव्यापी विराट् जीवनके साथ उनके जीवनका अवारित योग (सम्बन्ध) था। इसी वनने उन्हें छाया दी है, फल-फूल दिये हैं, कुश-समित् (तृण और यज्ञकाष्ठ) पहुँचाया है, उनके दैनिक समस्त कर्म, अवकाश और आवश्यकताओंके साथ इस वनके आदान-प्रदानका जीवन-मय सम्बन्ध था। इसी उपायसे अपने जीवनको चारों तरफके एक बड़े जीवनके साथ जोड़कर वे अपने जीवनका ज्ञान प्राप्त कर सके थे। अपने चारों तरफको वे शून्य निर्जीव और पृथक् नहीं समझते थे। इस बातको वे अपने सहज-स्वाभाविक अनुभवसे स्पष्ट जानते थे कि विश्व-प्रकृतिमेंसे उन्होंने प्रकाश हवा अन्न-जल आदि जो-कुछ भी दान ग्रहण किया है वह दान मिट्टीका नहीं, वृक्षका नहीं, शून्य आकाशका नहीं, बल्कि एक चेतनामय अनन्त आनन्दमेंसे ही उसका मूल प्रस्रवण या उद्गम है। इसीलिए उन्होंने निःश्वास प्रकाश और अन्न-जल सब-कुछको बड़ी श्रद्धाके साथ भक्ति-पूर्वक ग्रहण किया

था। इसीलिए निखिल-चराचरको अपने प्राणों-द्वारा, चेतनाके द्वारा, हृदयके द्वारा, ज्ञानके द्वारा, अपनी आत्माके साथ आत्मीय-रूपमें एक करके प्राप्त करना ही भारतवर्षका यथार्थ पाना है।

इसीसे हम समझ सकते हैं कि वनने भारतवर्षके चित्तको अपनी एकान्त छायामें, निगूढ़ प्राणोंमें, रखकर कैसे सुन्दर ढंगसे पाला है। भारतवर्षमें जो बड़े-बड़े दो प्राचीन युग बीत चुके हैं, वैदिक युग और बौद्ध-जैनयुग, इन दोनों युगोंको वन ही ने धात्रीके रूपमें धारण किया है। केवल वैदिक ऋषियोंने ही नहीं, भगवान बुद्ध और महावीरने भी कितने ही आम्रवनों और कितने ही वेणुवनोंमें अपने उपदेशोंकी वर्षा की है; राजप्रासादमें वे समाये ही नहीं, वनोंने ही उन्हें अपने हृदयसे लगाया था।

क्रमशः भारतवर्षमें राज्य, साम्राज्य और नगर-नगरियोंकी स्थापना हुई। देश-विदेशोंके साथ उसके वाणिज्यका आदान-प्रदान चला; अन्न-लोलुप कृषि-क्षेत्रोंने धीरे-धीरे छाया-शान्त अरण्योंको दूरसे दूर हटा दिया; परन्तु उस प्रतापशाली ऐश्वर्य-पूर्ण यौवन-दृप्त भारतवर्षने वनका ऋण स्वीकार करनेमें कभी भी लज्जाका अनुभव नहीं किया। तपस्याको ही उसने अन्य समस्त प्रयासोंकी अपेक्षा अधिक सम्मान दिया है। और वनवासी प्राचीन तपस्वियोंको ही अपना आदिपुरुष मानकर भारतवर्षके राजा-महाराजाओंने भी गौरव अनुभव किया है। भारतवर्षकी पुराण-कथाओंमें जो-कुछ महत्, आश्चर्यकारी और पवित्र है, जो कुछ श्रेष्ठ और पूज्य है, वह सब-का-सब प्राचीन तपोवनकी स्मृतिके साथ विजड़ित है। बड़े-बड़े राजाओंके राज्य करनेकी

कथा याद कर रखनेकी उसने कोशिश नहीं की, परन्तु नाना क्रान्तियोंके भीतरसे गुजरते हुए भी, वनकी सामग्रीको अपने प्राणोंकी सामग्री बनाकर आज तक वह उसे वहन करता आया है। मानव-इतिहासमें भारतवर्षकी यही सबसे बड़ी विशेषता है।

भारतमें विक्रमादित्य जब राजा थे, उज्जयिनी जब महानगरी थी और कालिदास जब कवि थे, तब इस देशमें तपोवनका युग चल रहा था। तब हम मानवोंके महामेलाक बीचमें खड़े थे। तब चीनी, हून, शक, ईरानी, ग्रीक, रोमन सब हमारे चारों तरफ भीड़ लगाये हुए थे। उस समयका दृश्य जनक सरीखे राजाको एक ओर हल हाथमें लिये खेती करते और दूसरी ओर देश-देशान्तरसे आये हुए ज्ञान-पिपासुओंको ब्रह्म-ज्ञानकी शिक्षा देते हुए देखनेका दृश्य नहीं था। परन्तु उस ऐश्वर्य-मदसे गर्वित युगमें भी उस समयके श्रेष्ठ कविने तपोवनकी कथा ऐसे सुन्दर ढंगसे कही है कि उसे देखनेसे साफ समझमें आ जाता है कि तपोवन, हमारी दृष्टिसे ओझल हो जानेपर भी, हमारे हृदयमें जमकर बैठा हुआ है। कालिदास विशेषरूपसे भारतवर्षके ही कवि हैं, यह बात उनके तपोवनके चित्रणसे ही प्रमाणित हो जाती है। ऐसे परिपूर्ण आनन्दके साथ तपोवनके ध्यानको और कौन मूर्तिमान कर सका है!

'रघुवंश' काव्यकी ज्यों ही यवनिका उठती है त्यों ही सबसे पहले तपोवनका शान्त सुन्दर पवित्र दृश्य हमारी आँखोंके सामने प्रकाशमान हो उठता है।

उस तपोवनमें वनान्तरसे कुश-समिध और फल आदि संग्रह

करके तपस्वी आते दिखाई देते हैं ; और मानो एक अदृश्य अग्नि उनका प्रत्युद्गमन करती दिखाई देती है। वहाँ हरिण-हरिणियाँ ऋषि-पत्नियोंकी सन्तान-सी मालूम होती हैं। उन्हें नीवार धान्यका हिस्सा मिलता है, और वे बिना किसी संकोचके कुटीरका द्वार घेरे पड़ी रहती हैं। मुनि-कन्याएँ पेड़-पौधोंमें पानी देती हैं, और पौधोंके नीचेका आलबाल (पानी देनेका घेरा या मेंड़) ज्यों ही जलसे भर आता है त्यों ही वे हट जाती हैं ; पक्षी निःशंक होकर जल पीयें, यही उनका अभिप्राय रहता है। वहाँ हम देखते हैं, सूर्य पश्चिमाकाशकी ओर बढ़ रहा है, संध्या-समागम होनेके पहले ही कुटीरके प्रांगणमें नीवार-धान्यका ढेर लग गया है, और वहाँ हरिण-हरिणियाँ रोंथ कर रही हैं। आहुतिका सुगन्धित धुआँ पवनमें प्रवाहित होकर आश्रमोन्मुख अतिथियोंके सम्पूर्ण शरीरको पवित्र कर रहा है। तरु-लता और पशु-पक्षी सबके साथ मनुष्यके मिलनकी पूर्णता, यही इसके भीतरका भाव है।

सम्पूर्ण 'अभिज्ञान-शकुन्तल' नाटकमें, भोग-लालसासे निष्ठुर राजप्रासादको धिक्कार देता हुआ जो एक 'तपोवन' विराज रहा है उसका भी मूल स्वर यही है, चेतन-अचेतन सबके साथ मनुष्यके आत्मीय-सम्बन्धका माधुर्य।

'कादम्बरी'में तपोवनके वर्णनमें कवि लिखते हैं, 'वहाँ लताएँ पवनमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करती हैं, वृक्ष फूल बिखेर-बिखेरकर पूजा करते हैं, कुटीरके आँगनमें श्यामाक-धान्य सुखानेके लिए फैला दिये गये हैं ; वहाँ आँवले लवली लवंग कदली बदरी आदि फल संग्रह किये गये हैं, वटुकोंके अध्ययनसे वनभूमि मुखरित है,

वाचाल शुकपक्षी लगातार-सुननेसे-कंठस्थ-हुए आहुति-मंत्रोंका उच्चारण कर रहे हैं, अरण्य-कुक्कुट वैश्वदेव-बलिपिंड भक्षण कर रहे हैं; पासके सरोवरसे कलहंस-शिशु आ-आकर नीवार-बलि खाते और चले जाते हैं; हरिणियाँ अपने जिह्वा-पल्लवोंसे मुनि-बालकोंका लेहन कर रही हैं।'

इसकी भीतरी बात वही है, चेतन-अचेतन सबके साथ मनुष्यके आत्मीय सम्बन्धका पवित्र माधुर्य। तरु-लता और जीव-जन्तुओंके साथ मनुष्यके विच्छेदको दूर करके तपोवन प्रकाशमान हो रहा है, यही पुरानी बात ही हमारे देशमें शुरूसे चली आ रही है।

सिर्फ तपोवनके चित्रमें ही यह भाव प्रकट हुआ हो, सो बात नहीं। मनुष्यके साथ विश्व-प्रकृतिका सम्मिलन ही हमारे देशके समस्त प्रसिद्ध काव्योंमें परिस्फुटित हुआ है। जो घटनाएँ मानव-चरित्रका आश्रय लेकर व्यक्त होती रहती हैं, वे ही शायद प्रधानतः नाटककी उपादान-सामग्री होती हैं। इसीलिए अन्य देशोंके साहित्यमें हम देखते हैं कि नाटकमें विश्व-प्रकृतिका केवल आभास मात्र रखा जाता है, उसमें उसे अधिक स्थान देनेका अवकाश ही नहीं रहता। हमारे देशके प्राचीन नाटक जो आज तक अपनी ख्याति-रक्षा करते आये हैं, उनमें देखा जाता है कि प्रकृति भी नाटकमें अपने प्राप्य अंशसे वंचित नहीं हुई।

मनुष्यको घेरे-हुए जो यह जगत-प्रकृति है, यह तो अत्यन्त अन्तरंग-भावसे मनुष्यकी सम्पूर्ण विचारधारा और समस्त कर्मोंके साथ जकड़ी हुई है। मनुष्यका लोकालय (बस्ती) केवल एकान्त-रूपसे मानवमय हो जाय और उसकी संधोंमेंसे प्रकृतिको यदि

किसी भी तरह प्रवेशाधिकार न मिले, तो हमारी विचारधारा और कार्य क्रमशः कलुषित और व्याधिग्रस्त होकर अपनी अथाह गंदगीमें आत्महत्या करके मर मिटेंगे। यह जो प्रकृति हमारे अन्दर नित्य-नियमित कार्य कर रही है, फिर भी मालूम होता है मानो वह चुपचाप खड़ी है, मानो हम ही लोग सब बड़े-भारी कामके आदमी हैं और वह बेचारी महज एक शोभाकी चीज है! इस प्रकृतिको हमारे देशके कवियोंने अच्छी तरह पहचान लिया था। यह प्रकृति मनुष्यके सम्पूर्ण सुख-दुःखोंमें जो अपना स्वर मिला रही है, उस स्वर को हमारे देशके कवि हमेशासे अपने काव्योंमें बजाते आ रहे हैं।

'ऋतु-संहार' कालिदासकी कच्ची उमरकी रचना है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसमें तरुण-तरुणियोंका जो मिलन-संगीत है, उसका स्वरग्राम लालसाके निम्न सप्तकसे ही शुरू हुआ है; वह 'शकुन्तला' और 'कुमारसम्भव' की तरह तपस्याके उच्चतम सप्तक तक नहीं पहुंचा।

परन्तु कविने नवयौवनकी इस लालसाको प्रकृतिके विचित्र और विराट सुरके साथ मिलाकर मुक्त आकाशमें उसे झंकृत कर दिया है। धारा-यन्त्रसे मुखरित निदाघ-दिनान्तकी चन्द्र-किरणोंने इसमें अपना राग मिला दिया है, वर्षामें नवीन जल-सिंचनसे तापहीन शान्त वनान्तमें पवनसे हिलती हुई कदम्बकी शाखाएँ इस छन्दमें नाच रही हैं; आपक्वशालि-रुचिरा शारद-लक्ष्मी अपनी हंसरव-नूपुर-ध्वनिको इसके तालपर बजा रही हैं और वसन्तकी दक्षिण-पवनसे चंचल कुसुमित आम्र-शाखाका मर्मर-गुंजन इसीकी तानमें विस्तीर्ण हो रहा है।

इस विराट् प्रकृतिके भीतर जिस वस्तुका जहाँ स्वाभाविक स्थान है, वहाँ उसे रखकर देखा जाय तो मालूम होगा कि उसकी अत्युग्रता बिलकुल जाती रही है; और वहाँसे हटाकर अगर उसे केवल एक मनुष्यके दायरेमें ही सीमाबद्ध सङ्कुचित बनाकर रखा जाय, तो वह व्याधिकी तरह अत्यन्त उत्तप्त और रक्तवर्ण दिखाई देगी। शेक्सपियरके दो-एक खण्डकाव्य हैं; उनका वर्णनीय विषय है नर-नारीकी आसक्ति। पर उन काव्योंमें आसक्ति ही एकान्त-रूपसे जमकर बैठ गई है, उसके चारों तरफ और-किसीके लिए स्थान ही नहीं; न आकाश है, न हवा है, और न प्रकृतिके गीत-गन्ध-वर्ण-विचित्र विशाल आवरणसे, जो विश्वकी सम्पूर्ण लज्जाकी रक्षा किये हुए है, उसका कोई सम्बन्ध ही है। इसीलिए उन काव्योंमें प्रवृत्तिकी उन्मत्तता अत्यन्त दुःसहरूपसे प्रकट हो रही है।

'कुमारसम्भव' के तीसरे सर्गमें जहाँ मदनके आकस्मिक आविर्भावमें यौवन-चांचल्यकी उद्दीपनाका वर्णन है, वहाँ कालिदास ने उन्मत्तताको एक संकीर्ण सीमामें ही सर्वमयके रूपमें दिखानेका प्रयासमात्र किया है। आतशी शीशेके भीतरसे एक बिन्दुमात्रमें सूर्यकी किरणें इकट्ठी हो जानेसे वहाँ आग जल उठती है, पर वे ही किरणें जब आकाशमें सर्वत्र स्वभावतः बिखरी हुई रहती हैं तब वे गरमी तो अवश्य पहुंचाती हैं, पर जलाती नहीं। कालिदासने वसन्त और प्रकृतिकी सर्वव्यापी यौवन-लीलाके बीचमें हर-पार्वतीके मिलन-चांचल्यको निविष्ट करके उसके सम्भ्रमकी रक्षा की है।

कालिदासने पुष्प-धनुपकी डोरीको विश्व-संगीतके स्वरके साथ

विच्छिन्न और बेसुरा करके नहीं बजाया; उन्होंने जिस पटभूमिका पर अपना चित्र चित्रण किया है, वह तरु-लता और पशु-पक्षियोंको लिये-हुए समग्र आकाशमें अति विचित्र वर्णोंमें विस्तृत हुआ है।

केवल तृतीय सर्ग ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण 'कुमारसम्भव' काव्य ही एक विश्वव्यापी पटभूमिकापर अङ्कित है। इस काव्यकी भीतरी कथा एक गम्भीर और चिरन्तन कथा है। जो पाप-दैत्य प्रबल होकर सहसा स्वर्गलोकको न-जाने किधरसे नष्टभ्रष्ट कर देता है उसको पराजित करने-योग्य वीरता कैसे जन्म लेती है, यह एक समस्या है। यह समस्या मनुष्यकी चिरकालीन समस्या है। प्रत्येक मनुष्यके जीवनकी समस्या भी यही है; और यह सम्पूर्ण जातिमें, सारे राष्ट्रमें, नई-नई मूर्तियोंमें प्रकट होती रहती है।

कालिदासके समयमें भी एक समस्याने भारतवर्षमें अत्यन्त उत्कट रूप धारण किया था, यह बात कविके काव्योंके पढ़नेसे स्पष्ट मालूम हो जाती है। प्राचीनकालमें हिन्दू-समाजकी जीवन-यात्रामें जो एक सरलता और संयम था, उस समय वह टूट रहा था। राजा-महाराजागण उस समय अपने राजधर्मको भूलकर अपने निजी सुखमें डूबने लगे थे, भोगी हो गये थे। और इधर शकोंके आक्रमणसे भारतवर्षकी तब बार-बार दुर्गति हो रही थी। बाहरी दृष्टिसे देखनेसे, भारतवर्ष उस समय भोग-विलासके उपकरण और काव्य-संगीत-शिल्प-कलाकी चर्चामें सभ्यताकी श्रेष्ठता प्राप्त कर रहा था। कालिदासकी काव्य-कलाके भीतर उस समयके उपकरण-बहुल सम्भोगका राग बजा ही न हो, सो बात नहीं। वस्तुतः उनके काव्यके बाहरी अंशपर तत्कालीन

शिल्प-कलाका काफी प्रभाव था। इस तरह हम एक दिशामें उस जमानेके समयके साथ उस जमानेके कविका योग या सम्बन्ध स्पष्ट देख सकते हैं।

किन्तु, उस प्रमोद-भवनके स्वर्ण-जड़ित अन्तःपुरके भीतर बैठकर काव्य-लक्ष्मी वैराग्य-विकल-चित्तसे किसके ध्यानमें मग्न थीं? हृदय तो उनका यहाँ नहीं था। मन तो उनका इस आश्चर्यकारी कारु-विचित्र माणिक्य-कठिन कारागारसे बार-बार मुक्तिकी ही कामना कर रहा था।

कालिदासके काव्योंमें बाहरके साथ भीतरका, अवस्थाके साथ आकांक्षाका एक द्वन्द्व मौजूद है। भारतवर्षमें तपस्याका जो युग उस समय बीत चुका था, ऐश्वर्यशाली राज-सिंहासनके पास बैठे हुए कवि उसी निर्मल-सुदूर कालकी ओर एक वेदनाका भार लिये हुए देख रहे थे।

'रघुवंश' काव्यमें कवि भारतके जिस प्राचीन सूर्यवंशी राजाओंके चरित-गानमें प्रवृत्त हुए थे, उसमें उनकी वह वेदना निगूढ़ रूपसे विद्यमान है। उसका प्रमाण देखिये।

हमारे देशके काव्योंमें परिणामको अशुभकारी-रूपमें दिखानेकी प्रथा ठीक नहीं समझी जाती। वास्तवमें जिन रामचन्द्रके जीवनमें रघुका वंश उच्चतम शिखरपर पहुंचा है वहीं काव्यकी समाप्ति होती, तभी भूमिकाके वाक्य सार्थक हो सकते थे।

कविने भूमिकामें कहा है—'इस काव्यमें मैं, वाक्-सम्पदामें दरिद्र होनेपर भी, उन्हीं रघुराजके वंशका गुण-कीर्तन करूँगा जो जन्मकालसे शुद्ध थे, जो फल-प्राप्ति तक कार्य करते थे, समुद्र

तक जिनका राज्य था और स्वर्ग तक जिनका रथ-मार्ग था, यथाविधि जो अग्निमें आहुति दिया करते थे, यथाकाम जो प्रार्थियोंके अभावकी पूर्ति किया करते थे, यथापराध जो दण्ड देते थे, यथाकाल जो जाग्रत हो जाया करते थे, त्यागके लिए जो अर्थ-संचय करते थे, सत्यके लिए जो मितभाषी थे, यशके लिए जो विजयकी इच्छा करते थे, और सन्तान-प्राप्तिके लिए जो दारा ग्रहण करते थे, शैशवमें जो विद्याभ्यास करते थे, यौवनमें जिनके विषय-सेवा थी, वार्द्धक्यमें जो मुनिवृत्ति ग्रहण करते थे और योग साधनके बाद जिनका देह-त्याग होता था; कारण उनके गुणोंने मेरे कानोंमें प्रवेश करके मुझे चंचल कर दिया है।'

परन्तु गुण-कीर्तनमें ही इस काव्यकी समाप्ति नहीं हुई। कविको किस चीजने इतना चंचल कर दिया था, यह बात रघुवंशका परिणाम देखनेसे ही समझमें आ जाती है। रघुवंशको जिनके नामसे इतना गौरव प्राप्त हुआ है उनकी जन्म-कथा क्या है? उनका आरम्भ कहाँ है?

तपोवनमें दिलीप-दम्पतिकी तपस्यासे ही ऐसे राजाने जन्म लिया था। कालिदासने अपने राज-प्रभुओंके समक्ष इस बातको अपने नाना काव्योंमें नाना कौशलसे कहा है कि कठिन तपस्याके बिना कोई भी महान फल नहीं मिल सकता। जिन रघुने उत्तर दक्षिण पूर्व-पश्चिमके समस्त राजाओंको वीर-तेजसे पराजित करके पृथिवीपर एकछत्र राज्य-विस्तार किया था वे अपने माता-पिताके तप और साधनाके धन थे। फिर भरतने जो अपने वीर्य-बलसे चक्रवर्ती सम्राट होकर भारतवर्षको अपने नामसे धन्य किया था

उनकी जन्म-घटनामें अवारित प्रवृत्तिका जो कलंक पड़ा था कविने उसे तपस्याकी अग्निमें भस्म और दुःखके अश्रु-जलसे पूरी तरह धोये बगैर नहीं छोड़ा।

'रघुवंश'का आरम्भ राजोजित ऐश्वर्य-गौरवके वर्णनसे नहीं हुआ। सुदक्षिणाको अपनी बाईं तरफ लिये-हुए राजा दिलीपने तपोवनमें प्रवेश किया। चारों समुद्र जिनकी अनन्यशासना पृथिवीकी खाई थे, ऐसे राजा अविचलित निष्ठा और कठोर संयमके साथ बराबर तपोवनकी धेनुकी सेवा करते रहे थे।

संयममें तपस्यामें तपोवनमें रघुवंशका आरम्भ है और मदिरामें इन्द्रिय-भोगोंकी मत्ततामें प्रमोद-भवनमें उसका उपसंहार। इस अन्तिम सर्गके चित्रमें वर्णनकी उज्ज्वलता काफी है, किन्तु जो अग्नि लोकालयको जलाकर भस्म कर डालती है वह भी तो कम उज्ज्वल नहीं होती। एक पत्नीके साथ दिलीपका तपोवनमें वास शान्त और फीके वर्णसे अंकित है, और बहु-नायिकाओंके साथ अग्निवर्णका आत्मघात असंयत बाहुल्यके साथ मानो आगकी रेखामें वर्णित है।

प्रभात जैसा शान्त और पिंगल-जटाधारी ऋषि-बालकोंके समान पवित्र है, और अपना मोती-सा सौम्य उज्ज्वल प्रकाश लिये-हुए शिशिरसे भीगी-हुई पृथिवीपर धीर पदोंसे अवतरण करता है, और नवजीवनकी अभ्युदय-वार्तासे जगतको उद्बोधित कर देता है, कविके काव्यमें भी उसी प्रकार तपस्याके द्वारा सुसमाहित राज-महात्म्य वैसे ही स्निग्ध तेज और संयत वाणीसे महोदयशाली रघुवंशकी सूचना की गई है। और नाना वण-

विचित्रित मेघ-जालसे घिरा हुआ अपराह्न जैसे अपनी अद्भुत रश्मिच्छटासे पश्चिम-आकाशको क्षण-भरके लिए प्रगल्भ बना देता है और देखते-देखते भीषण क्षय आकर उसकी समस्त महिमा अपहरण कर लेता है, और अन्तमें कुछ ही क्षणोंमें वाक्यहीन कर्महीन अचेतन अन्धकारमें सब-कुछ विलुप्त हो जाता है, उसी प्रकार कविने काव्यके अन्तिम सर्गमें विचित्र भोग-आयोजनके भीषण समारोहमें ही रघुवंश-ज्योतिष्कके बुझनेका वर्णन किया है।

काव्यके इस आरम्भ और समाप्तिमें कविके हृदयकी एक बात छिपी हुई है, वे नीरव दीर्घ-निश्वासके साथ कहते हैं, 'क्या था, और क्या हो गया!' उस प्रचीन समयमें, जब कि सामने अभ्युदय था तब, तपस्या ही थी सबसे बढ़कर प्रधान ऐश्वर्य; और आज, जब कि सामने दीख रहा है विनाश तब, विलासके उपकरणोंके ढेरोंका अन्त नहीं; और भोगकी अतृप्त अग्नि सहस्र शिखाओंमें प्रज्वलित हो-होकर अपने चारों ओरकी आँखोंको झुलसाये दे रही है!

कालिदासके अधिकांश काव्योंमें यह द्वन्द्व स्पष्ट दिखाई देता है। इस द्वन्द्वका समाधान कहाँ है, 'कुमारसम्भव' काव्यमें यही दिखाया गया है। कविने इस काव्यमें कहा है, त्यागके साथ ऐश्वर्यका और तपस्याके साथ प्रेमका मेल होनेमें ही शौर्यका उद्भव है; उस शौर्यसे ही मनुष्य सब प्रकारके पराभवोंसे उद्धार पाता है। अर्थात् त्याग और भोगके सामंजस्यमें ही पूर्ण शक्ति है। त्यागी शिव जब अकेले समाधि-मग्न थे, तब भी स्वर्गराज्य असहाय था, और फिर सती जब अपने पिताके घर ऐश्वर्यमें अकेली आबद्ध थी तब भी दैत्यका उपद्रव प्रबल था।

प्रवृत्ति ज्यों ही प्रबल हो उठती है, त्याग और भोगका सामंजस्य उसी समय टूट जाता है।

किसी-एक संकीर्ण स्थानमें जब हम अहंकार या वासनाको गाढ़ा कर लेते हैं तब हम 'समग्र' की हानि करके उसके अंशको बड़ा बनानेकी कोशिश करते हैं। इससे अमंगल होता है। अंशके प्रति आसक्ति होनेके कारण 'समग्र' के विरुद्ध विद्रोह होना, यही पाप है।

इसीलिए त्यागकी आवश्यकता है। यह त्याग अपनेको रीता कर डालनेके लिए नहीं, बल्कि अपनेको पूर्ण करनेके लिए ही है। त्यागके मानी हैं आंशिकका त्याग समग्रके लिए, क्षणिकका त्याग नित्यके लिए, अहंकारका त्याग प्रेमके लिए, सुखका त्याग आनन्दके लिए। इसीलिए उपनिषद्‌में कहा गया है—'त्यक्तेन भुंजीथाः', त्यागके द्वारा भोग करना, आसक्तिके द्वारा नहीं।

पहले पार्वतीने मदनकी सहायतासे शिवको चाहा था, वह चेष्टा व्यर्थ हुई। अन्तमें त्यागकी सहायतासे तपस्याके द्वारा ही उन्हें प्राप्त किया।

काम ठहरा केवल अंशके प्रति ही आसक्त, समग्रके प्रति वह अन्धा है; किन्तु शिव है सकल देश और सकल कालका। कामना त्यागे बिना उसके साथ मिलन हो ही नहीं सकता।

'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'— त्यागके द्वारा ही भोग करना, यही उपनिषद्‌का अनुशासन है; यही 'कुमारसम्भव' काव्यकी सार-कथा है, और यही हमारे 'तपोवन'की साधना है; प्राप्त करनेके लिए त्याग करना।

Sacrifice और resignation, आत्म-त्याग और दुःख स्वीकार, इन दो बातोंका माहात्म्य-वर्णन हम किसी-किसी धर्मशास्त्रमें विशेषरूपसे पाते हैं। जगतके सृष्टिकार्यमें उत्ताप जैसे एक मुख्य चीज है, मनुष्यके जीवन-गठनमें दुःख भी उसी प्रकार एक जबरदस्त रासायनिक शक्ति है; इसके द्वारा चित्तका दुर्भेद्य काठिन्य गल जाता है, और असाध्य हृदयकी गाँठ खुल जाती है। इसलिए संसारमें जो दुःखको सुख-रूपमें ही नम्रभावसे स्वीकार कर सकते हैं, वे ही यथार्थ तपस्वी हैं।

परन्तु इससे कोई यह न समझ लें कि इस दुःख-स्वीकारको ही उपनिषद्‌ने अपना लक्ष्य बनाया है। त्यागको दुःखके रूपमें अंगीकार कर लेना नहीं, बल्कि त्यागको भोगके रूपमें ही वरण कर लेना उपनिषद्‌का अनुशासन है। उपनिषद्‌ने जिस त्यागकी बात कही है उस त्याग ही में पूरा-पूरा ग्रहण है, वह त्याग ही गम्भीरतर आनन्द है; वह त्याग ही निखिलके साथ योग है और भूमाके साथ मिलन है। इसीलिए भारतवर्षका जो आदर्श तपोवन है वह तपोवन शरीरके विरुद्ध आत्माका, संसारके विरुद्ध संन्यासका निरन्तर मल्लयुद्ध करनेका कोई मल्लक्षेत्र नहीं है। 'यत्किंच जगत्यां जगत्' अर्थात् 'जो-कुछ-है-सबके साथ त्यागके द्वारा बाधाहीन मिलन' यही है तपोवनकी साधना। इसीलिए तरु-लता और पशु-पक्षियोंके साथ भारतवर्षके आत्मीय-सम्बन्धका योग ऐसा घनिष्ट है कि अन्य देशके लोगोंके लिए वह अद्भुत मालूम होता है। और यही कारण है कि हमारे देशके कवित्वमें जो प्रकृति-प्रेमका परिचय मिलता है, दूसरे देशके काव्योंके देखे

मानो उसकी एक विशिष्टता है। यह हमारा प्रकृतिपर प्रभुत्व करना नहीं, प्रकृतिका भोग करना नहीं, बल्कि प्रकृतिके साथ सम्मिलन है।

और साथ ही, यह सम्मिलन वन-वासियोंकी बर्बरता नहीं है। तपोवन यदि अफ्रिकाका जङ्गल होता, तो कहा जा सकता था कि प्रकृतिके साथ मिलकर रहना एक तामसिकता मात्र है। परन्तु मनुष्यका चित्त जहाँ साधनाके द्वारा जाग्रत है वहाँका मिलन केवल एक अभ्यासके जड़त्वसे नहीं हो सकता। संस्कारकी बाधा नष्ट हो जानेपर जो मिलन स्वाभाविक हो उठता है, तपोवनका मिलन वही मिलन है।

हमारे सभी कवियोंने कहा है—तपोवन शान्त-रसका आधार है। तपोवनका जो एक विशेष रस है, वह है शान्तरस। शान्त रस परिपूर्णताका रस है। जैसे सात वर्णरश्मियोंके एकसाथ मिल जानेपर उसका रंग सफेद हो जाता है, उसी तरह चित्तका प्रवाह नाना भागोंमें विभक्त न होकर जब अविच्छिन्न-रूपसे निखिलके साथ अपने सामंजस्यको एकदम गले तक भर देता है, तभी शान्तरस का उद्भव होता है। तपोवनमें वही शान्तरस है। यहाँ सूर्य अग्नि वायु जल स्थल आकाश तरु-लता मृग पक्षी सभीके साथ चेतनाका एक परिपूर्ण योग है। यहाँ चारों ओरके किसीके साथ भी मनुष्यका विच्छेद नहीं है, विरोध नहीं है।

भारतवर्षके तपोवनमें यह जो एक शान्तरसका संगीत-सुर बाँधा गया था, उस संगीतके आदर्शसे ही हमारे देशमें अनेक मिश्र राग-रागिनियोंकी सृष्टि हुई है। इसीलिए हमारे काव्यमें

मानवीय घटनाओंके बीच प्रकृतिको इतना बड़ा स्थान दिया गया है। यह केवल इसीलिए कि सम्पूर्णताके लिए हमारे भीतर जो एक स्वाभाविक आकांक्षा है उस आकांक्षाकी पूर्ति हो।

'अभिज्ञान-शकुन्तल' नाटकमें जो दो तपोवन हैं उन दोनोंने शकुन्तलाके सुख-दुःखको एक विशालतामें सम्पूर्ण कर दिया है। उसका एक तपोवन पृथवीपर है और दूसरा स्वर्गलोककी सीमामें। एक तपोवनमें सहकारिताके साथ नव-मल्लिकाके मिलनोत्सवमें नवयौवना ऋषिकन्याएँ पुलकित हो-हो उठती हैं, मातृहीन मृग-शिशुओंको वे नीवार खिला-खिलाकर उनका पालन-पोषण कर रही हैं, कुशकी फाँससे उनका मुंह छिद जानेपर इंगुदी तेल लगाकर उनकी सेवा कर रही हैं। इस तपोवनने दुष्यन्त-शकुन्तलाके प्रेमको सरल सुन्दर और स्वाभाविक बनाकर उसे विश्व-स्वरके साथ मिला लिया है।

और, संध्या-मेघके समान किम्पुरुष-पर्वतपर जो हेमकूट है वहाँ सुरासुरोंके गुरु मरीचि अपनी पत्नीके साथ मिलकर तपस्या कर रहे हैं; लताजाल-जड़ित जो हेमकूट है वह पक्षि-नीड़ोंसे शोभित अरण्य-जटामंडलको वहन करता हुआ योगासनमें अचल शिवके समान सूर्यकी ओर दृष्टि किये ध्यानमग्न है; वहाँ केशर (अयाल) पकड़कर सिंह-शिशुको उसकी माताके स्तनसे छुड़ाकर जब उपद्रवी तपस्वि-बालक उसके साथ खेलने लगता है तब पशुका वह दुःख ऋषि-पत्नीके लिए असह्य हो उठता है। उसी तपोवन ने शकुन्तलाके अपमानित विच्छेद-दुःखको अति विशाल शान्ति और पवित्रता दान की थी।

यह बात माननी ही पड़ेगी कि पहला तपोवन मर्त्यलोकका था और दूसरा अमृत-लोकका। अर्थात् पहला है 'जैसा हुआ करता है' और दूसरा है 'जैसा होना चाहिए'। इस 'जैसा होना चाहिए' की ओर 'जैसा-हुआ-करता-है' चल रहा है। उसीकी ओर देखता हुआ वह अपना शोधन कर रहा है, अपनेको पूर्ण बना रहा है। 'जैसा-हुआ-करता-है' ठहरा सती अर्थात् सत्य, और 'जैसा-होना-चाहिए' है शिव अर्थात् मंगल। कामनाका क्षय करके तपस्याके भीतरसे सती और शिवका मिलन हुआ है। शकुन्तलाके जीवनमें भी 'जैसा-हुआ-करता-है' ने तपस्याके द्वारा अन्तमें 'जैसा-होना-चाहिए' में आकर अपनेको सफल कर डाला है। दुःखके भीतरसे मर्त्य अन्तमें जाकर स्वर्गके प्रान्त तक पहुंच गया है।

मानस-लोकका यह जो दूसरा तपोवन है, वहाँ भी मनुष्य प्रकृतिको त्यागकर स्वतन्त्र नहीं हुआ। स्वर्ग जाते समय युधिष्ठिर अपने कुत्तेको साथ ले गये थे। प्राचीन भारतके काव्योंमें हम देखते हैं कि मनुष्य जब स्वर्ग जाता है तो प्रकृतिको अपने साथ लेता जाता है, विच्छिन्न होकर स्वयं बड़ा नहीं बन जाता। मरीचिके तपोवनमें मनुष्य जैसा तपस्वी है, हेमकूट भी वैसा ही तपस्वी है; सिंह भी वहाँ हिंसा त्याग देता है, पेड़-पौधे भी वहाँ इच्छापूर्वक प्रार्थियोंके अभावकी पूर्ति करते रहते हैं। मनुष्य अकेला पूर्ण नहीं, बल्कि निखिलको लेकर ही वह पूर्ण है; इसलिए कल्याण जब आविर्भूत होता है तो सबके साथ योगसे ही उसका आविर्भाव होता है।

रामायणमें रामका वनवास हुआ। केवल राक्षसोंके उपद्रवके सिवा उस वनवासमें उन्हें और कोई दुःख ही नहीं था। वे एक

वनके बाद दूसरा वन, एक नदीके बाद दूसरी नदी, एक पर्वतके बाद दूसरा पर्वत पार करते चले गये हैं; वनभूमिपर सोकर रातें बिताई हैं; परन्तु कहीं भी उन्होंने दुःख-क्लेशका अनुभव नहीं किया। इन सब नदी-पर्वत-वनोंके साथ उनके हृदयका मेल था, यहाँ वे प्रवासी नहीं थे।

अन्य देशके कवि राम-लक्ष्मण-सीताके माहात्म्यको उज्ज्वल रूपमें देखनेके लिए ही वनवासके दुःखोंको अत्यन्त कठोर रूपमें चित्रित करते; परन्तु वाल्मीकिने कतई ऐसा नहीं किया। उन्होंने वनके आनन्दका ही बार-बार पुनरुक्तियों द्वारा कीर्तन किया है।

राज-ऐश्वर्य जिनके अन्तःकरणको मुग्ध और अभिभूत किये हुए है, विश्व-प्रकृतिके साथ मिलन उनके लिए कभी भी स्वाभाविक नहीं हो सकता। सामाजिक संस्कार और चिरजन्मका कृत्रिम अभ्यास पद-पदपर उन्हें बाधा बिना पहुंचाये नहीं रह सकता। उन सब बाधाओंके भीतरसे प्रकृतिको वे हमेशा प्रतिकूल ही देखा करते हैं। हमारे राजपुत्र ऐश्वर्यमें प्रतिपालित थे, किन्तु ऐश्वर्यकी आसक्ति उनके अन्तःकरणको अभिभूत नहीं कर सकी थी। धर्मके अनुरोधसे वनवासको स्वीकार करना ही उसका पहला प्रमाण है। उनका चित्त स्वाधीन था, शान्त था, इसीलिए उन्होंने वनमें प्रवास दुःखका अनुभव नहीं किया, इसीलिए तरु-लता और पशु-पक्षियोंने उन्हें बराबर आनन्द ही दिया है। यह आनन्द प्रभुत्वका आनन्द नहीं, भोगका आनन्द नहीं, बल्कि मिलनका आनन्द है। इस आनन्दकी नींवमें तपस्या थी, आत्म-संयम था। इसीमें उपनिषद् की वह वाणी थी, 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।'

कौशल्याकी राजकुल-वधू सीता वनको जा रही हैं—

एकैकं पादपंगुल्मं लतां वा पुष्पशालिनीम्
अदृष्टरूपां पश्यन्ती रामं पप्रच्छ साबला।
रमणीयान् बहुविधान् पादपान् कुसुमोत्करान्
सीतावचनसंरब्ध आनयामास लक्ष्मणः।
विचित्रबालुकाजलां हंससारसनादिताम्
रेमे जनकराजस्य सुता प्रेक्ष्य तदा नदीम्।

'जिन तरु-गुल्म अथवा पुष्प-शालिनी लताओंको सीताने पहले कभी नहीं देखा था, उनके बारेमें वे रामसे पूछने लगीं। उनके अनुरोधसे लक्ष्मण उन्हें पुष्प-मंजरीसे भरे हुए अनेक प्रकारके पौधे और लताएँ ला-लाकर देने लगे। वहाँ विचित्र बालुका-जल-युक्त और हंस-सारसोंसे मुखरित नदी देखकर जानकी मन-ही-मन आनन्दका अनुभव करने लगीं।'

पहले-पहल वनमें जाकर रामने चित्रकूट-पर्वतपर जहाँ आश्रय लिया था वहाँ वे—

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीञ्च तां माल्यवतीं सुतीर्थां
ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात्।

'उस सुरम्य चित्रकूट, उस सुतीर्था माल्यवती नदी, उस मृग पक्षियोंसे सेवित वनभूमिको प्राप्त होकर राम पुरविप्रवासके दुःख को त्यागकर सन्तुष्ट चित्तसे आनन्द करने लगे।'

दीर्घकालोषितस्तस्मिन् गिरौ गिरिवनप्रियः।

'गिरि-वनके प्रेमी रामचन्द्र दीर्घकाल तक उस पर्वतपर वास करते हुए एक दिन सीताको चित्रकूटका शिखर दिखाकर कहने लगे—

न राज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्।

इस रमणीय पर्वतको देखकर राज्य-च्युति भी मुझे दुःख नहीं देती, सुहृदोंसे दूर रहना भी मेरे लिए पीड़ाका कारण नहीं होता।'

वहाँसे राम जब दंडकारण्यमें पहुंचे, तो वहाँ उन्हें आकाशमें सूर्यमंडलके समान तेज तापस-आश्रमका मंडल दिखाई दिया। यह आश्रम 'शरण्यं सर्वभूतानाम्' सब प्राणियोंके लिए शरण था। वह ब्राह्मी लक्ष्मी द्वारा समावृत था। वहाँकी कुटीरें सुमार्जित थीं, चारों तरफ कितने ही मृग और कितने ही पक्षी विद्यमान थे।

रामका वनवास इसी तरह व्यतीत हुआ था, कभी रमणीय वनमें और कभी पवित्र तपोवनमें। रामके प्रति सीताका और सीताके प्रति रामका प्रेम परस्पर एक दूसरेसे प्रतिफलित होकर चारों तरफके मृग-पक्षियोंको आच्छन्न कर देता था। अपने प्रेमके योगसे वे केवल अपने ही साथ नहीं, बल्कि विश्वलोकके साथ योग-युक्त हुए थे। इसीलिए सीता-हरणके बाद रामने वनको अपनी विच्छेद-वेदनाका सहचर पाया था। सीताका वियोग केवल रामके लिए ही नहीं था, सम्पूर्ण अरण्यने ही सीताको खो दिया था। कारण, राम-सीताके वनवासके समय अरण्यने एक नया ऐश्वर्य पाया था, वह था मनुष्यका प्रेम। उस प्रेमसे उसने अपने पल्लवोंसे घनीभूत श्यामलताको, अपनी छायासे गम्भीर गहनताके रहस्यको एक प्रकारकी चेतनाके संचारसे रोमांचित कर लिया था।

शेक्सपियरका 'As you like it' नाटक एक वनवास-कहानी है। 'टेम्पेस्ट' भी वही है; और 'Midsummer night's dream' भी अरण्य-काव्य है। किन्तु उन काव्योंमें मनुष्यके प्रभुत्व और प्रवृत्तिकी लीला ही एकान्तरूपसे दिखाई गई

है। उनमें वनके साथ सौहार्द नहीं दिखाई देता। वनवासके साथ मनुष्यके चित्तका सामंजस्य उसमें नहीं हुआ। या-तो उसपर विजय पानेकी, या फिर उसे त्याग देनेकी कोशिश ही बराबर की गई है। उनमें या-तो विरोध है या विराग; और नहीं-तो उदासीनता है। मनुष्यकी प्रकृतिने विश्व-प्रकृतिको किसी तरह ठेल-ढकेलकर स्वयं स्वतन्त्र होकर अपना गौरव प्रकट किया है।

मिलटनके 'पैराडाइज लौस्ट' काव्यमें आदि मानव-दम्पतिके स्वर्गारण्य-वासका वर्णन एक ऐसा विषय है जिससे उस काव्यमें अति सहज-स्वाभाविक भावसे मनुष्यके साथ प्रकृतिका मिलन, सरल प्रेमके सम्बन्धमें, विराट और मधुर रूपमें प्रकट होना चाहिए था। कविने प्रकृतिके सौन्दर्यका वर्णन किया है, जीव-जन्तु वहाँ हिंसा त्यागकर एकसाथ रहते हैं, यह भी कहा है; परन्तु मनुष्यके साथ उनका कोई भी सात्त्विक सम्बन्ध नहीं है। उनकी उत्पत्ति खासकर मनुष्यके भोगके लिए ही हुई है, मनुष्य उनका प्रभु है। ऐसा आभास कहीं भी नहीं मिलता कि आदि-दम्पति प्रेमके आनन्दकी अधिकतामें तरु-लता और पशु-पक्षियोंकी सेवा कर रहे हैं, और भावनाको कल्पनाको नदी-पर्वत-अरण्यके साथ नाना लीलाओंमें सम्मिलित कर रहे हैं। इस स्वर्गारण्यके जिस निर्जन निकुंजमें मानवके प्रथम पिता-माता विश्राम करते थे, वहाँ—Beast, bird, insect or worm durst enter none; such was their awe of man. अर्थात् पशु-पक्षी कीट-पतंग कोई भी वहाँ प्रवेश करनेका साहस नहीं

करता था ; मनुष्यके प्रति उनका ऐसा ही सभय-सम्भ्रम था, मनुष्यका उनपर इतना रौब गालिब था।

यह जो निखिलके साथ मनुष्यका विच्छेद है, इसकी जड़में एक गभीरतर विच्छेदकी कहानी है। इसमें 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्', 'जगतमें जो कुछ है सबको ईश्वरके द्वारा समावृत समझना चाहिए', इस वाणीका अभाव है। इस पाश्चात्य काव्यमें ईश्वरकी सृष्टि ईश्वरका यशोकीर्तन करनेके लिए ही है ; उसमें ईश्वर सिर्फ दूर रहकर अपनी इस विश्व-रचनासे बन्दना ग्रहण कर रहा है। मनुष्यके साथ भी आंशिक रूपमें प्रकृतिका वह सम्बन्ध प्रकट हुआ है, अर्थात् प्रकृति है मनुष्यकी श्रेष्ठता प्रचार करनेके लिए।

भारतवर्ष मनुष्यकी श्रेष्ठताको अस्वीकार करता हो, सो बात नहीं। परन्तु प्रभुत्व करनेको ही वह श्रेष्ठताका मुख्य लक्षण नहीं मानता। मनुष्यकी श्रेष्ठताका सर्वप्रधान परिचय ही यह है कि मनुष्य सबके साथ मिल सकता है। वह मिलन मूढ़ताका मिलन नहीं, चित्तका मिलन है ; और इसलिए आनन्दका मिलन है। उस आनन्दकी कहानी ही हमारे काव्योंमें गाई गई है।

'उत्तर-रामचरित'में राम और सीताका जो प्रेम है, उस प्रेमने आनन्दके प्राचुर्य-वेगसे चारों ओरके जल-स्थल-आकाशमें प्रवेश किया है। इसीलिए राम दूसरी बार गोदावरीका गिरितट देखकर कह उठे थे—'यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवो मे।' इसीलिए सीताके विच्छेदके समय उन्होंने अपनी पूर्व-निवासभूमिको देखकर खेद प्रकट किया था—'मैथिलीने अपने कर-कमलोंसे लाया

हुआ जल नीवार और तृण देकर जिन वृक्ष पक्षी और हरिणोंका पालन किया था, उन्हें देखकर मेरा हृदय पाषाण-गलनेकी तरह गला जा रहा है।'

'मेघदूत' में यक्षका विरह अपने दुःखके आकर्षणसे अलग जाकर एक कोनेमें पड़ा हुआ विलाप नहीं कर रहा। विरहके दुःखने ही उसके चित्तको नववर्षासे प्रफुल्लित पृथिवीकी समस्त नद-नदी-अरण्य-नगरीमें परिव्याप्त कर दिया है। मनुष्यकी हृदय-वेदनाको कविने संकीर्ण रूपमें नहीं देखा, उसको विराटमें विस्तीर्ण कर दिया है; इसीलिए प्रभुके शापग्रस्त एक यक्षकी दुःखवार्ताने चिरकालके लिए वर्षाऋतुके मर्मस्थानको अधिकार किये हुए प्रणयी-हृदयकी कल्पना या सुख-स्वप्नको विश्व-संगीतके ध्रुपदमें इस तरह बाँध दिया है।

भारतवर्षकी यही तो विशेषता है। तपस्याके क्षेत्रमें भी हम यही देखते हैं, और जहाँ उसकी हृदय-वृत्तिकी लीला है वहाँ भी यही देखनेमें आता है।

मनुष्य दो तरहसे अपने महत्त्वका अनुभव करता है, एक स्वतन्त्रतामें और दूसरे मिलनमें; एक भोगके द्वारा, दूसरे योगके द्वारा। भारतवर्षने स्वभावतः ही दूसरा मार्ग ग्रहण किया है। यही कारण है जो हम देखते हैं कि जहाँ-कहीं भी प्रकृतिमें कोई विशेष सौन्दर्य या महिमाका आविर्भाव है, वहीं भारतवर्षका तीर्थस्थान है। मानव-चित्तके साथ विश्व-प्रकृतिका मिलन जहाँ स्वभावतः ही हो सकता है उसी स्थानको भारतने अपना तीर्थ माना है। इन स्थानोंमें मनुष्यकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके कोई

भी उपकरण नहीं हैं। न तो वहाँ खेती ही हो सकती है और न बस्ती बनाकर रहा ही जा सकता है; न वाणिज्य-वस्तु ही का आयोजन है और न राजाकी राजधानी ही है; कमसे कम यह सब कुछ वहाँ मुख्य नहीं है। वहाँ तो निखिल प्रकृतिके साथ मनुष्यने अपने योगकी अनुभूति करके आत्मको सर्वज्ञ और बृहत् समझा है। वहाँ मनुष्य प्रकृतिको अपनी आवश्यकताओंकी सिद्धिका क्षेत्र नहीं समझता, उसको आत्मानुभूतिकी साधनाका क्षेत्र समझता है; और इसीलिए उसे वह पुण्यस्थान समझता है।

भारतवर्षका हिमालय पवित्र है, भारतवर्षका बिन्ध्याचल पवित्र है, भारतवर्षकी नदियाँ जो लोकालयोंको अपनी अक्षय-धारासे स्तन्य दान करती आ रही हैं वे सब-की-सब पुण्य-सलिला हैं। हरिद्वार पवित्र है, हृषीकेश पवित्र है, केदारनाथ - बदरिकाश्रम पवित्र है, कैलास पवित्र है, मानस-सरोवर पवित्र है, पुष्कर पवित्र है, गंगामें यमुनाका मिलन पवित्र है, समुद्रमें गंगाका अवसान पवित्र है। जिस विराट प्रकृतिके द्वारा मनुष्य परिवेष्टित है, जिसके प्रकाशने आकर उसके चक्षुओंको सार्थक किया है, जिसका उत्ताप उसके सर्वाङ्गमें प्राणोंका स्पन्दित कर देता है, जिसके जलमें उसका अभिषेक होता है, जिसके अन्नसे उसका जीवन है, जिसके अभ्रभेदी रहस्य-निकेतनके नाना द्वारोंसे नाना दूतोंने निकल निकलकर शब्दमें गन्धमें वर्षामें भावमें मनुष्यके चैतन्यको नित्य नियत जाग्रत बनाये रखा है, भारतवर्षने उसी प्रकृतिमें अपनी भक्तिवृत्तिको सर्वत्र ओतप्रोत करके प्रसारित कर दिया है। जगतको भारतवर्षने पूजाके द्वारा ग्रहण किया है; उसे केवल एक

उपभोगके द्वारा खर्व नहीं किया, उदासीनताके द्वारा उसे अपने कार्यक्षेत्रके बाहर दूर नहीं सरका दिया ; इस विश्व-प्रकृतिके साथ पवित्र सम्बन्धके द्वारा ही भारतने अपनेको विशाल बनाकर सत्य रूपमें जाना है, भारतके तीर्थस्थान इसी बातकी घोषणा कर रहे हैं।

विद्यालाभ केवल विद्यालयपर ही निर्भर नहीं है ; प्रधानतः छात्रोंपर ही निर्भर है। अनेक छात्र विद्यालयमें जाते हैं, यहाँ तक कि उपाधि भी पा लेते हैं, किन्तु विद्या नहीं पाते। उसी तरह तीर्थमें बहुतसे लोग जाते हैं, परन्तु तीर्थका यथार्थ फल सबको प्राप्त नहीं होता। जो देखनेकी चीजको देखते नहीं, अन्ततोगत्वा उनकी विद्या किताबी विद्या रह जाती है, और धर्म बाह्य आचारोंमें फँसा रहता है। वे तीर्थमें जाते जरूर हैं, पर जाने-मात्रको ही वे पुण्य समझ बैठते हैं, पानेको नहीं। उसमें किसी विशेष जल या विशेष मिट्टीके किसी वस्तुगुणकी कल्पना मात्र होती है, और कुछ नहीं ; इससे मनुष्यका लक्ष्य भ्रष्ट होता है। जो चित्तकी सामग्री है उसे वस्तुमें निर्वासित करना, उसे नष्ट करना है। हमारे देशमें साधनासे परिमार्जित चित्तशक्ति जितनी ही मलिन हुई है, यह निरर्थक बाह्यिकता उतनी ही बढ़ती गई है, इस बातको मानना ही पड़ेगा। परन्तु हमारी इस दुर्गतिके दिनोंकी जड़ताको ही मैं किसी भी हालतमें भारतवर्षका चिरन्तन अभिप्राय मानकर ग्रहण नहीं कर सकता।

किसी एक विशेष नदीके जलमें स्नान करनेसे अपनी या तीन करोड़ पूर्वपुरुषोंकी पारलौकिक सद्गति होनेकी सम्भावना है, इस विश्वासको मैं सत्यकी नींवपर अवलम्बित माननेको तैयार नहीं,

और न इस विश्वासको मैं श्रद्धाकी ही वस्तु समझता हूं। परन्तु अवगाहन-स्नानके समय नदीके जलको जो व्यक्ति यथार्थ भक्तिके साथ अपने सम्पूर्ण अंग और मनसे ग्रहण कर सकता है, मैं उसे भक्तिका पात्र ही समझूँगा। कारण, नदीके जलको साधारण तरल पदार्थ समझनेका साधारण मनुष्यमें जो एक स्थूल संस्कार है, एक तरहकी तामसिक अवज्ञा है, उस जड़ संस्कार या अवज्ञाको उसने अपनी सात्त्विकताके द्वारा अर्थात् चैतन्यमयताके द्वारा नष्ट कर दिया है; और इसीलिए नदीके जलके साथ केवल उसके शारीरिक व्यवहारका बाह्य सम्बन्ध ही नहीं हुआ, बल्कि उसके चित्तका योग-साधन हुआ है। इस नदीके भीतरसे परम चैतन्य अपनी चेतनाका एकभावमें स्पर्श करता है। उस स्पर्शके द्वारा स्नानका जल केवल उसके शरीरकी मलिनताको ही नहीं, बल्कि उसके चित्तके मोह-प्रलेपको भी माँजकर साफ कर देता है।

अग्नि जल मिट्टी अन्न आदि सामग्रियोंका अनन्त रहस्य कहीं दैनन्दिन अभ्यासके द्वारा हमारे लिए बिलकुल ही मलिन न हो जाय, यह सोचकर प्रतिदिन नाना कार्यों और नाना अनुष्ठानोंमें हमारे यहाँ उनकी पवित्रता याद रखनेकी विधि है। जो मनुष्य चेतनभावसे उसका स्मरण रख सकता है उसके साथ योग रखना ही भूमाके साथ हमारा योग है; और इस बातको जिसकी बोध-शक्ति स्वीकार कर सकती है उस व्यक्तिने एक महान सिद्धि प्राप्त कर ली है। स्नानके जल और आहारके अन्नके प्रति श्रद्धा रखनेकी जो शिक्षा है वह मूढ़ताकी शिक्षा नहीं है। उसमें जड़त्वके लिए जरा भी प्रश्रय नहीं है; कारण, इन सब अभ्यस्त

सामग्रियोंको तुच्छ बना डालना ही जड़ता है, उसमें भी चित्तका उद्‌बोधन होना, यह केवल चैतन्यके विशेष विकाससे ही सम्भव हो सकता है। हाँ, इसमें तो कुछ कहना ही नहीं कि जो व्यक्ति मूढ़ है, सत्यको अपनानेमें जिसकी प्रकृतिमें स्थूल बाधा है, वह सम्पूर्ण साधनाको ही विकृत कर लेता है; और लक्ष्यको वह बार-बार गलत स्थानपर स्थापित करता रहता है।

यहाँ करोड़ों आदमियोंने, लगभग समस्त जातिने, मांस-मछली खाना बिलकुल ही त्याग दिया है; पृथ्वी-भरमें कहीं भी इसकी तुलना नहीं मिलती। मनुष्योंमें और-कहीं ऐसी जाति देखनेमें नहीं आती जो आमिष आहार न करती हो।

भारतवर्षने यह जो आमिषका परित्याग किया है, यह कृच्छ्रव्रत (कष्टदायक व्रत) साधनके लिए नहीं, अपने शरीरको पीड़ा देकर किसी शास्त्रोपदिष्ट पुण्य-लाभके लिए नहीं, बल्कि उसका एकमात्र उद्देश्य है—जीवोंके प्रति हिंसा त्याग देना।

इस हिंसाको बिना त्यागे जीवके साथ जीवका योग-सामंजस्य नष्ट होता है। प्राणीको अगर हम खा डालने और पेट भरनेकी चीज समझकर उसी दृष्टिसे देखने लगें, तो कभी भी उसे सत्य-रूपमें नहीं देख सकते। फिर हम प्राणको इतने तुच्छ रूपमें देखनेके आदी हो जाते हैं कि सिर्फ खानेके लिए ही नहीं, बल्कि महज प्राणीहत्या करना ही हमारे आमोद-प्रमोदका अंग बन जाता है; और निदारुण अहैतुकी हिंसाको मनुष्य जल-स्थल आकाश-गुफा देश-विदेश सर्वत्र व्याप्त करता चला जाता है।

भारतवर्षने इस योग-भ्रष्टतासे, बोध-शक्तिकी इस जड़तासे मनुष्यको हमेशा बचानेकी कोशिश की है।

मनुष्यका ज्ञान बर्बरतासे बहुत दूर आगे बढ़ गया है, इसका एकमात्र प्रधान लक्षण क्या है? यही न, कि मनुष्य विज्ञानकी सहायतासे सर्वत्र ही नियमको देख रहा है। जब तक वह उसे नहीं देख सकता था तब तक उसके ज्ञानकी सम्पूर्ण सार्थकता नहीं थी। तब तक विश्व-चराचरमें वह विच्छिन्न होकर रह रहा था, और देख रहा था कि ज्ञानका नियम केवल उसमें अपने ही में है और इस विराट विश्व-व्यापारमें नहीं है। इसीलिए उसमें ज्ञान होने ही के कारण जगतमें मानो वह जाति-बहिष्कृत हुआ-सा रहता था। परन्तु अब उसका ज्ञान अणुसे अणुतम और विशालसे विशालतम सभीके साथ अपना सम्बन्ध स्थापन करनेमें प्रवृत्त हुआ है, यही विज्ञानकी साधना है।

भारतवर्षने जिस साधनाको अपनाया या ग्रहण किया है, वह है विश्व-ब्रह्माण्डके साथ चित्तका योग, आत्माका योग, अर्थात् सम्पूर्ण योग। केवल ज्ञानका योग नहीं, बोधका योग। गीताका कथन है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः
मनसस्तु पराबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः।

'इन्द्रियोंको श्रेष्ठ पदार्थ कहा जाता है, किन्तु इन्द्रियोंसे श्रेष्ठ मन है, और मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, और बुद्धिसे भी जो श्रेष्ठ है वह है 'सः' अर्थात् परमात्मा।'

इन्द्रियाँ क्यों श्रेष्ठ हैं? इसीलिए न, कि इन्द्रियोंसे विश्वके साथ हमारा योग साधन होता है। परन्तु वह योग आंशिक है।

इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, क्योंकि मनके द्वारा जो ज्ञानमय योग होता है वह व्यापकतर है। परन्तु ज्ञानके योगसे भी सम्पूर्ण विच्छेद दूर नहीं होता। मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, कारण बोधके द्वारा जो चैतन्यमय योग होता है वह सम्यक् रूपसे परिपूर्ण है। उसी योगके द्वारा ही हम समस्त जगतमें उन्हींकी उपलब्धि करते हैं जो सबसे बढ़कर श्रेष्ठ हैं। इस 'सबसे-बढ़कर-श्रेष्ठ' को सबके भीतर बोधके द्वारा अनुभव करना भारतवर्षकी साधना है।

अतएव यदि हम यह समझ जायँ कि भारतवर्षको इसी साधनासे दीक्षित करना ही भारतवासियोंकी शिक्षाका प्रधान लक्ष्य होना चाहिए, तो मनमें यह निश्चय रखना ही होगा कि केवल इन्द्रियोंकी शिक्षाको ही नहीं, केवल ज्ञानकी शिक्षाको ही नहीं, बल्कि बोधकी शिक्षाको विद्यालयोंमें प्रधान स्थान देना ही होगा। अर्थात् हमारी शिक्षा सिर्फ कारखानोंमें जाकर दक्षता सीखनेमें ही नहीं, स्कूल-कालेजोंमें जाकर परीक्षा पास करनेमें ही नहीं, बल्कि हमारी यथार्थ शिक्षा तपोवनमें है, प्रकृतिके साथ मिलकर तपस्याके द्वारा पवित्र होनेमें है।

हमारे स्कूल-कालेजोंमें भी तपस्या है, किन्तु वह मनकी तपस्या है, ज्ञानकी तपस्या है; बोधकी तपस्या नहीं।

ज्ञानकी तपस्यासे मनको बाधाओंसे मुक्त किया जाता है। जो पूर्व-संस्कार हमारे मनकी धारणाको एकांगी या इकतरफा बनाये रखते हैं उन्हें क्रमशः धीरे-धीरे साफ कर देना चाहिए। जो निकट होनेसे बड़ा है और दूर होनेसे छोटा, जो बाहर होनेके कारण ही प्रत्यक्ष है और भीतर रहनेके कारण प्रच्छन्न या छिपा हुआ,

जो विच्छिन्न करके देखनेसे निरर्थक है और संयुक्त करके देखनेसे ही सार्थक मालूम होता है, उसकी यथार्थताकी रक्षा करते हुए, उसे देखनेकी शिक्षा देनी चाहिए। बोधकी तपस्याकी वाधा रिपुकी वाधा है। प्रवृत्ति जब असंयत हो उठती है तब चित्तका साम्य नहीं रहता; और बोध विकृत हो जाता है। कामनाकी वस्तुको हम जो श्रेय रूपमें देखते हैं, सो इसलिए नहीं कि वह वास्तवमें श्रेय है, बल्कि इसलिए कि उसकी हममें कामना है। लोभकी चीजको हम हमेशा बड़ी देखा करते हैं; इसलिए नहीं कि वह सचमुच ही बड़ी है, बल्कि इसलिए कि उसपर हमारा लोभ है।

इसलिए, ब्रह्मचर्यके संयमके द्वारा बोध-शक्तिको वाधा-मुक्त करनेकी शिक्षा देना आवश्यक है। भोग-विलासके आकर्षणसे अभ्यासको मुक्त कर देना चाहिए; जो सामयिक उत्तेजनाएँ मनुष्यके चित्तको क्षुब्ध और विचार-बुद्धिको सामंजस्य-भ्रष्ट कर देती हैं उनके धक्कों या झकोरोंको बचाते हुए बुद्धिको सरलताके साथ सीधा बढ़ने देना चाहिए।

जहाँ साधना चल रही है, जहाँकी जीवन-यात्रा सरल और निर्मल है, जहाँ सामाजिक संस्कारोंकी संकीर्णता नहीं है, जहाँ व्यक्तिगत और जातिगत विरोध-बुद्धिको दमन करनेकी चेष्टा है, वहीं, भारतवर्षने जिसे विशेषरूपसे विद्या कहा है उसके प्राप्त करनेका स्थान है।

मैं जानता हूं, बहुतसे लोग कह उठेंगे कि यह महज एक भावुकताका उच्छ्वास है, साधारण अनुभवहीन व्यक्तिकी दुराशा मात्र है। किन्तु मैं इस बातको हरगिज नहीं मान सकता। जो

सत्य है वह अगर असाध्य हो, तो वह सत्य ही नहीं। हाँ, यह सच है कि जो सबसे बढ़कर श्रेय है वह सबसे सहज हो, सो बात नहीं। इसीलिए उसकी साधना चाहिए। असलमें, पहली बात तो यह है कि सत्यपर श्रद्धा होना ही कठिन है। मान लो, हमें रुपयेकी जरूरत है, यह विश्वास जब ठीक तौरसे मनमें बैठ जाता है, तो फिर ऐसी आपत्ति हम करते ही नहीं कि रुपया पैदा करना कठिन है। उसी तरह भारतवर्षने जब विद्याके प्रति निश्चितरूपसे श्रद्धा की थी, तब उस विद्याकी प्राप्तिकी साधनाको असाध्य समझकर मजाकमें उड़ा नहीं दिया, तपस्या तब अपने आप ही सत्य हो उठी थी।

इसलिए, पहले देशके उस सत्यपर हमारी श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धा अगर हो गई, तो फिर दुर्गम बाधाओंमेंसे भी उसका मार्ग आप ही बनता चला जायगा।

वर्तमान समयमें, अभी, देशमें इस तरहकी तपस्याका स्थान है। ऐसे विद्यालय बहुत-से हो जायेंगे, ऐसी आशा मैं नहीं करता। परन्तु आज, जब कि हम विशेष रूपसे राष्ट्रीय विद्यालयकी प्रतिष्ठा करनेके लिए जाग्रत हो उठे हैं, तो भारतवर्षके विद्यालय जैसे होने चाहिए, कम-से-कम उसके एकमात्र आदर्शको देशके अनेक चांचल्य और नाना विरुद्ध भावोंके आन्दोलनके ऊपर जाग्रत हो उठना चाहिए।

राष्ट्रीय विद्या-शिक्षाके मानी जैसा यूरोप समझता है, हम भी अगर वैसा ही समझें, तो हमारे समझनेमें बहुत-भारी गलती होगी। हमारे देशमें कुछ विशेष संस्कार हैं और

हमारी जातिमें कुछ खास लोकाचार हैं, उनसे सीमाबद्ध होकर अपने जातीय अभिमानको अत्युग्र बना देनेके उपायको मैं किसी भी हालतमें राष्ट्रीय शिक्षा नहीं मान सकता। राष्ट्रीयताको हम परम पदार्थ मानकर उसकी पूजा नहीं करते, यही हमारी राष्ट्रीयता है; और, 'भूमैव सुखं, नाल्पे सुखमस्ति, भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः', यही है हमारी राष्ट्रीयताका मन्त्र।

प्राचीन भारतके तपोवनमें महासाधनाकी जो वनस्पति एक दिन सिर ऊँचा किये खड़ी थी और सर्वत्र जिसने अपनी शाखा-प्रशाखाएँ विस्तृत करके समाजकी नाना दिशाओंपर अधिकार कर लिया था, वही थी हमारी जातीय या राष्ट्रीय साधना। वह साधना योगकी साधना थी। योग-साधना कोई उत्कट शारीरिक या मानसिक व्यायाम-चर्चा नहीं है। योग-साधनाके मानी हैं सम्पूर्ण जीवनको इस प्रकार चलाना जिससे स्वतन्त्रताके द्वारा विक्रमशाली हो जाना ही हमारा लक्ष्य न हो जाय, बल्कि मिलनके द्वारा परिपूर्ण हो जानेको ही हम चरम परिणाम समझें, और ऐश्वर्य संचित करनेको नहीं बल्कि सत्यके द्वारा आत्माकी अनुभूति करनेको ही सफलता मानें।

बहुत प्राचीन कालमें, एक दिन अरण्यमय भारतवर्षमें हमारे आर्य पितामहोंने प्रवेश किया था। आधुनिक इतिहासमें यूरोपियनोंने ठीक उसी तरह ही नवीन आविष्कृत महाद्वीपोंके महारण्यमें मार्ग उद्घाटित किया है। उनमेंसे साहसियोंने अग्रगामी होकर अपरिचित भूखंडोंको अनुवर्तियोंके लिए अनुकूल बना लिया है। हमारे देशमें भी अगस्त्य आदि ऋषिगण अग्रगामी

थे ; और उन्होंने अपरिचित दुर्गमताकी बाधाओंको दूर करके गहन वनको वासोपयोगी बना लिया था। तब पूर्वतन अधिवासियोंके साथ प्राणोंकी बाजी रखकर जैसे वे लड़े थे, अब भी वैसा ही हुआ है। परन्तु इन दोनों इतिहासोंकी धाराएँ यद्यपि ठीक एक ही अवस्थामें से प्रवाहित हुई हैं, तथापि दोनों एक ही समुद्रमें जाकर मिली नहीं हैं।

अमेरिकाके वनमें जो तपस्या हुई है, उसके प्रभावसे वनमेंसे बड़े-बड़े शहर इन्द्रजालकी तरह जाग उठे हैं। भारतवर्षमें इस तरहसे शहरोंकी सृष्टि हुई ही न हो, सो बात नहीं; परन्तु भारतने उसके साथ-ही-साथ अरण्यको भी अंगीकार कर लिया था। अरण्य भारतवर्षके द्वारा विलुप्त नहीं हुआ, बल्कि सार्थक हुआ था। जो वन बर्बरोंका आवास मात्र था, वह ऋषियोंका तपोवन बन गया था। अमेरिकामें अरण्यका जो-कुछ अंश बचा है वह आज अमेरिकाकी प्रयोजनीय सामग्री बन गया है; कहीं-कहीं वह भोगकी वस्तु है, किन्तु योगका आश्रम कतई नहीं। भूमाकी अनुभूतिसे वे अरण्य पुण्य-स्थान नहीं बने; मनुष्यकी श्रेष्ठतर अन्तरतर प्रकृतिके साथ उस अरण्य-प्रकृतिका पवित्र मिलन स्थापित नहीं हुआ। अरण्यको नवीन अमेरिकाने अपनी बड़ी चीज कुछ भी नहीं दी, और अरण्यने भी उसे अपने बड़े परिचयसे वंचित ही रखा। नवीन अमेरिकाने जिस तरह अपने पुराने अधिवासियोंको लगभग लुप्त ही कर दिया है, अपने साथ मिलाया नहीं, उसी तरह अरण्योंको अपनी सभ्यतासे बाहर फेंक दिया है, अपने साथ मिला नहीं लिया। नगर और नगरियाँ ही

अमेरिकाकी सभ्यताके उत्कृष्ट निदर्शन हैं, इस नगर-स्थापनाके द्वारा ही मनुष्यने अपनी स्वतन्त्रताके प्रतापको अभ्रभेदी बनाकर उसका प्रचार किया है। और यहाँ भारतकी सभ्यताका चरम निदर्शन है 'तपोवन'। उस तपोवनमें मनुष्यने निखिल प्रकृतिके साथ मानवताके मिलनकी ही शान्त-संयतभावसे अनुभूति की है।

कोई यह न समझ लें कि भारतवर्षकी इस साधनाको ही मैं एकमात्र साधना मानकर उसका प्रचार करना चाहता हूं। बल्कि मैं तो खास तौरसे यही बात कहना चाहता हूं कि मनुष्यमें वैचित्र्यकी सीमा नहीं। वह ताड़वृक्षकी तरह एक ही ऋजुरेखामें आकाशकी ओर नहीं बढ़ता, बल्कि बटवृक्षकी तरह असंख्य डाल और पत्तियोंसे अपनेको चारों ओर विस्तीर्ण कर देता है। उसकी जो शाखा स्वभावतः जिधर जा सकती है उसे उसी तरफ सम्पूर्ण रूपसे जाने देनेमें ही समग्र वृक्ष परिपूर्णताको प्राप्त होता है; और उसीमें सभी शाखाओंका मंगल है।

मनुष्यका इतिहास जीवधर्मी है। वह निगूढ़ प्राणशक्तिसे बढ़ता रहता है। वह लोहे-पीतलकी तरह साँचेमें ढालनेकी चीज नहीं है। बाजारमें किसी खास समयपर किसी खास सभ्यताका मूल्य बहुत ज्यादा बढ़ जानेके कारण ही समस्त मानव-समाजको एक ही कारखानेमें ढालकर फैशनके वशीभूत मूढ़ खरीददारोंको खुश कर देनेकी दुराशा बिलकुल व्यर्थकी चीज है।

पैरोंका छोटा होना सौन्दर्य या आभिजात्यका लक्षण है, यह समझकर कृत्रिम उपायोंसे उन्हें संकुचित करके चीनकी स्त्रियोंने छोटे पैर नहीं पाये, बल्कि विकृत पैर ही उन्हें मिले हैं। भारत

यदि हठसे जबरन अपनेको यूरोपीय आदर्शका अनुगत बनावे तो वह यूरोप नहीं बन सकता, सिर्फ विकृत भारतवर्ष ही बन सकता है।

इस बातको दृढ़ताके साथ याद रखना चाहिए कि एक राष्ट्रके साथ अन्य राष्ट्रके अनुकरण और अनुसरणका सम्बन्ध नहीं बल्कि आदान-प्रदानका सम्बन्ध है। हमारे अन्दर जिस चीजकी कमी नहीं या हमें जिस चीजकी आवश्यकता नहीं, तुम्हारे पास भी ठीक वही चीज मौजूद हो, तो तुम्हारे साथ हमारा लेन-देन या परिवर्तन नहीं चल सकता ; और उस हालतमें हमारे लिए तुम्हारी समकक्ष-रूपमें कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। भारतवर्ष यदि असली भारतवर्ष न बन सके, तो दूसरोंके बाजारोंमें मजदूरी करनेके सिवा दुनियामें उसकी और कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। तब उसका अपने प्रति अपना सम्मान-ज्ञान जाता रहेगा ; और उस हालतमें फिर अपनेमें अपना आनन्द भी नहीं रहेगा।

इसलिए, आज हमें अच्छी तरह समझ-बूझकर निर्णय करना होगा कि जिस सत्यके द्वारा भारतवर्षने अपने-आपको निश्चित रूपसे प्राप्त किया था वह सत्य क्या है? वह सत्य मुख्यतः वणिक्‌वृत्ति नहीं, स्वराज्य नहीं, स्वादेशिकता नहीं, वह सत्य विश्व-जागतिकता है। वह सत्य भारतवर्षके तपोवनमें साधित हुआ है, उपनिषद्‌में उच्चारित हुआ है, गीतामें व्याख्यान हुआ है, बुद्ध और महावीरने उस सत्यको संसारमें समग्र मानव-जातिके नित्य-व्यवहारमें सफल बनानेके लिए तपस्या की है; और

कालान्तरमें, नाना प्रकारकी दुर्गति और विकृतियोंमेंसे गुजरते हुए भी, कबीर नानक आदि महापुरुषोंने उसी सत्यका प्रचार किया है। भारतवर्षका सत्य है ज्ञानमें अद्वैत तत्त्व, भावमें विश्व-मैत्री और कर्ममें योग-साधना। भारतवर्षके हृदयमें जो उदार तपस्या गंभीर भावसे संचित है, वही तपस्या आज हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध और अंग्रेजोंको अपनेमें मिलाकर एक कर लेनेके लिए प्रतीक्षा कर रही है; दास-रूपमें नहीं, जड़-रूपमें नहीं, बल्कि सात्त्विक भावसे, साधक भावसे। जब तक ऐसा न होगा, तब तक हमें दुःख ही उठाना पड़ेगा, अपमान सहना पड़ेगा; तब तक नाना दिशाओंसे बारम्बार हमें व्यर्थ होना पड़ेगा, असफल होना पड़ेगा। हमारे भारतवर्षमें ब्रह्मचर्य, ब्रह्म-ज्ञान, सब जीवोंपर दया, सब प्राणियोंमें आत्मोपलब्धि और आत्माकी अनुभूति किसी भी जमानेमें सहज एक काव्य-कथा या मतवादके रूपमें नहीं थी; प्रत्येकके जीवनमें इसे सत्य बनानेके लिए अनुशासन था। उस अनुशासनको यदि हम न भूलें और अपनी सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षाको उस अनुशासनके अनुगत कर लें, तभी हमारी आत्मा विराटमें अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर सकेगी; और तब फिर कोई भी सामयिक बाह्य अवस्था हमारी उस स्वाधीनताको विलुप्त नहीं कर सकेगी।

प्रबलतामें सम्पूर्णताका आदर्श नहीं है। समग्रके सामंजस्यको नष्ट करके प्रबलता अपनेको स्वतन्त्ररूपमें दिखलाती है इसीलिए वह बड़ी मालूम होती है; परन्तु असलमें वह छोटी है। भारतवर्षने उस प्रबलताको नहीं चाहा, उसने परिपूर्णताको ही चाहा था।

वह परिपूर्णता निखिलके साथ योगमें है, और वह योग अहंकारको दूर करता है विनम्र होकर। यह विनम्रता एक आध्यात्मिक शक्ति है, दुर्बलस्वभावके लोग इसे नहीं पा सकते। वायुका जो प्रवाह नित्य है, उसकी शक्ति शान्तताके द्वारा ही आँधीसे अधिक है। इसीलिए आँधी केवल संकीर्ण स्थानको ही कुछ समयके लिए क्षुब्ध कर सकती है, और शान्त वायु-प्रवाह समस्त पृथिवीको नित्यकाल तक वेष्टित किये रहता है। यथार्थ नम्रता, जो सात्त्विकताके तेजसे उज्ज्वल है, जो त्याग और संयमकी कठोर शक्तिसे दृढ़ प्रतिष्ठित है, वही नम्रता ही सकलके साथ बिना बाधाके मिलित होकर सत्य-रूपमें नित्य-रूपमें समस्तको प्राप्त करती है। वह किसीको दूर नहीं करती, विच्छिन्न नहीं करती, बल्कि अपनेको त्याग करती है और सभीको अपना बनाती है। इसीलिए महात्मा ईसाने कहा है कि जो विनम्र है वही जगद्विजयी है, भूधनका अधिकार एकमात्र उसीको है।